'कां सोस्मिताम्'—इस चतुर्थ मन्त्र से श्रीजी की अनुकूलता की प्रार्थना करते हैं– 'क' नाम सुख का है, श्रीजी सुखस्वरूपा हैं उनका स्वभाव सभी के लिये अनुकूल है। इसी स्वभाव का आगे विवेचन करते हैं–उनका मुखचन्द्र मन्दहास्य से युक्त रहता है जिससे असहाय अपराधीगण शङ्कारहित होकर उनकी शरण में आ सकें। इससे वे कृपामयी हैं यह भी सूचित होता है।

हिरण्यप्राकाराम्—वेद कहते हैं–भगवान् अज होते हुये भी अनेक अवतार धारण करते हैं–तथा अवतारी रूप से भी अवतार का उत्कर्ष अधिक है। श्रीजी के लिये भी विष्णुपुराण में कहा गया है कि भगवान् जब देवरूप में अवतरित होते हैं तब श्रीजी भी देवरूप धारण करती हैं। श्रीराघवेन्द्र के साथ श्रीसीताजी के रूप में और श्रीकृष्णचन्द्र के साथ श्रीरुक्मिणीजी के रूप में अवतीर्ण होती हैं। अन्य अवतारों में भी भगवान् के साथ इनका नित्य संयोग रहता है।

इस प्रकार अपनी इच्छा से श्रीजी भगवान् के अनुकूल अनेक विग्रह धारण कर लेती हैं। अथवा स्वर्णमय परकोटों से घिरे हुये आनन्दमय महामणिमण्डप के मध्यमें निवास करने वाली हैं।

आर्द्राम्— अपने अनुकूल–आश्रितों पर दया की दृष्टि रखने वाली, अपने अनुकूल भक्तों के विषय में कृपारस से सदा उनकी आँखें भीगीं रहती हैं अतः उन्हें 'आर्द्राम्' कहा गया है। अथवा अनुकूल तेज से युक्त हैं।

ज्वलन्तीम्—प्रतिकूल जीवों के लिये श्रीजी का तेज असह्य है। भक्तों के लिये नित्य अनुकूल, तथा दुष्टों के लिये आपका

तेज भयदायक कहा गया है। भगवान् के विषय में कही गयी श्रीवत्साङ्कमिश्रजी की यह सूक्ति श्रीजी के विषय में भी समान रूप से प्रमाण है।

तृप्ताम्--भगवान् के स्वरूप, रूप, गुण, विभूति आदि के अनुभव से तथा उनके संश्लेष से उत्पन्न आनन्द से सदा तृप्त रहती हैं।

तर्पयन्तीम्--अपने स्वरूप रूपगुण आदि के अनुभव से तथा अपने संश्लेष से प्राप्त होने वाले सुख से प्रियतम प्रभु को तृप्त करती रहती हैं। अपने तथा प्रियतम दोनों के स्वरूप रूप, गुण, विभूति का अनुभव प्रदानकर अपने आश्रित भक्तों को तृप्त करती रहती हैं। अर्थात् युगलोपासकों को युगल रस प्रदान कर आनन्दित करती रहती हैं। अथवा गीता में प्रतिपादित आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी, ज्ञानी, इन चार भक्तों को उनके अनुरूप चारों पुरुषार्थों को प्रदान कर उन्हें तृप्त करती रहती हैं।

पद्मेस्थिताम्- अपने सौन्दर्य, सौगन्ध्य, सौकुमार्य के अनुरूप सुन्दर सुगन्ध सुकुमार सरसिजासन पर आसीन रहने वाली।

पद्मवर्णाम्-श्रीकिशोरीजी कमल के समान वर्ण वाली हैं। श्रीरामायण में कहा गया है कि श्रीकिशोरीजी समस्त कल्याण-गुणगणों से युक्त स्त्रियों में उत्तम वधू हैं, अयोध्या की स्त्रियाँ कहती हैं-समस्त सौभाग्यवती स्त्रियों में श्रीसीताजी सीमन्तिनी-मौलमणि हैं। क्योंकि श्रीराघवेन्द्र की हृदयप्रिया हैं, इस प्रकार उत्तम कान्ता होने के कारण श्रीजी के हस्तकमल, पादकमल, नयनकमल के प्रान्त भाग [कोये] कमल के समान लाल है अथवा समस्त श्रीविग्रह ही कमल के समान हैं।

श्रियम्--बद्ध मुक्त सभी जीवों के एकमात्र आश्रयण के योग्य, इस प्रकार कल्याणगुणगण विशिष्ट सौन्दर्य माधुर्य लावण्य सौकुमार्य सौगन्ध्य आदि से जिनका श्रीविग्रह सदा सिंचित रहता है। **'ताम्'**--सभी प्रकार से समाश्रयण के योग्य। **इह**-- मैं एक मात्र उनका शेष हूँ।

उपह्वये-- ऐसा मैं उनकी अनुकूलता एवं प्रसन्नता के लिये हाथ जोड़कर उनको अनुकूल करना चाहता हूँ।

"चन्द्रां प्रभासाम्"--इस पञ्चम मन्त्र से आवाहन के द्वारा आयी हुई श्रीजी की शरणागति प्राप्तकर दारिद्रच आदि दुर्गुणों के नाश के लिये उनसे प्रार्थना करते हैं।

चन्द्राम्--अपने गुणों से जीव तथा भगवान् दोनों को आनन्दित करती हैं अतः इनको 'चन्द्राम्' कहा गया है।

प्रभासाम्--जब आश्रित जीवों के मनोरथों को पूर्ण करती है तब श्रीजी का मुखमण्डल हर्षातिरेक से कान्तियुक्त हो जाता है। रामायण में कहा गया है—राक्षसेन्द्र विभीषण का लंका में अभिषेक करने के पश्चात् ही श्रीराघवेन्द्र कृतकृत्य हुये एवं पीड़ारहित हुये तथा उन्हें विशेष आनन्द प्राप्त हुआ। उसी प्रकार भक्तों को कृतकृत्य देखकर श्रीजी को विशेष आनन्द का अनुभव होता है। अथवा उत्कृष्ट रूप से प्रकाशित होने के कारण उनको प्रभासाम् कहा गया है। अर्थात् शुद्ध सत्त्व प्रकाशमय, शुभगुणों का आश्रय, दिव्यमङ्गलमय श्रीजी का विग्रह है।

यशसा ज्वलन्तीम्— आश्रितों की सभी अभिलाषाओं को पूर्ण करने के कारण जिनको अतुल यश प्राप्त है तथा जो लोक

में प्रकाशित हैं। अथवा सर्वेश्वर की सहधर्मचारिणी होने के कारण जिनका सौभाग्य सर्वलोक विदित है। अथवा अनुकूल भक्तों के लिये जिनका प्रकाश सुखकर है। प्रतिकूल दुष्टों के लिये जिनकी प्रकाश तापकारक है ऐसी दिव्यज्योतिस्वरूपा हैं। अथवा अतिशय मंगल विभूति से युक्त होने के कारण उसी के अनुरूप गुण, विभूति आदि प्रदान करने के कारण कृपास्वरूपिणी प्रकाशमयी हैं।

श्रियम्—समस्त जगत् का अपने गुणों से पालन करती हैं। आश्रित भक्तों की प्रार्थना स्वयं श्रवण करती हैं तथा प्रभु को सुनाती हैं। इस प्रकार भगवद् प्राप्ति कराने योग्य समस्त सामग्रियों से युक्त हैं।

लोके देवजुष्टाम्—भगवान् में जिनकी अलौकिक प्रीति है, अथवा ब्रह्मादिक देवतागण अपनी-अपनी अभिलाषा की पूर्ति के लिये जिनका आराधना करते रहते हैं। अथवा लोक में अर्थात् त्रिपादविभूति तथा एकपादविभूति दोनों लोकों में ब्रह्मा, शिव इन्द्र, अग्नि आदि देवों एवं अनन्त गरुड़ आदि देवश्रेष्ठों द्वारा अपने-अपने पदों के अनुरूप ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये तथा आनन्द के अनुभव के लिये यजन, भजन, मनन आदि द्वारा जो सेवित रहती हैं। अथवा देव निरूपाधिक क्रीड़ा परायण भगवान् ने जिनको अत्यन्त प्रेम का आश्रय बना रखा है। देवजुष्टाम् का यह भी अर्थ है।

उदाराम्—भक्त लोग जितनी याचना करते हैं उससे अधिक फल श्रीजी प्रदान करती हैं, इसीलिये उनमें अतिशय उदारता

है। स्वामी पराशरभट्ट श्रीगुणरत्नकोष में कहते हैं-हे जगज्जननि! जो कोई जीव आप के समक्ष हाथ जोड़ देता है उनमें से किसी को अधिकार के अनुसार ब्रह्मलोक पर्यन्त लौकिक ऐश्वर्य, किसी को आत्मा की प्राप्ति तथा किसी को परमपद प्रदान करने के पश्चात् भी इस जीव को मैंने कुछ भी नहीं दिया है ऐसा विचार कर आप लज्जित हो जाती हैं। आपकी इस उदारता पर हम बलिहारी जाते हैं। आपकी यह कैसी उदारता है ? अर्थात् हाथ जोड़ने मात्रसे परमपद प्राप्त कराने पर भी आपको लज्जा होती है कि हमने इसको कुछ नहीं दिया ऐसी उदारता अन्यत्र कहीं श्रवणगोचर नही होती।

पद्मनेमिम्—पद्म ही नेमि ले जाने का साधन है जिसका वह पद्मनेमिः। सुदर्शनचक्र को नेमि कहते हैं। श्रीजी के चरणकमल, हस्तकमल, चक्राकार विकसित हैं। अथवा अपने करकमलों से आश्रितों के अनिष्टों को दूर कर समस्त पुरुषार्थों को प्रदानकर उन्हें अपने चरणकमलों की प्राप्ति कराती हैं।

ताम्—पूर्वोक्त ऐश्वर्य से युक्त होने के कारण समस्त वेदान्त में जो प्रसिद्ध हैं।

अहम्—अत्यन्त अकिंचन मैं उपायान्तर शून्य होकर—

शरणम्प्रपद्ये—आपकी शरण में आया हूँ। अन्यत्र भी आया है 'लोक परलोक' के वैभवों की प्राप्ति के लिये अर्थात् अनिष्ट-निवृत्तिपूर्वक इष्टप्राप्ति के लिये साक्षात् श्रीजी के युगलचरण-कमल की हम शरण ग्रहण करते हैं।

त्वाम्वृणे—आपके चरणारविन्दयुगल का ही हम आश्रय लेते हैं। इस शरणागति से आपकी प्राप्ति में विरोधिस्वरूप,

अलक्ष्मीः—जो अलक्ष्मी, दारिद्रय, दुर्गुण आदि हैं।

मे—आपके भजन कीर्तन में प्रवृत्त मुझसे **नश्यताम्**— दूर रहें अर्थात् ये सभी दुर्गुण नष्ट हो जायँ।

शरणम्प्रपद्ये—अथवा मेरी अभिलाषाओं की पूर्ति केवल आपके चरणारविन्द से ही है, इस निश्चय से आपके चरणारविन्दों में अपने आपको समर्पित कर रहे हैं। इस मन्त्र में श्रीजी की छह प्रकार की शरणागति कही गई है। श्री शब्द से अनुकूल का संकल्प तथा प्रतिकूल का वर्जन, इन दो अंगों का वर्णन किया गया है। 'अहम्' शब्द से दीनता का अनुसंधान किया गया है। अतः इसमें कार्पण्य का वर्णन है।

त्वाम्वृणे— इससे गोप्तृत्ववरणरूप अङ्ग का भी अनुसन्धान किया गया है।

शरणम्प्रपद्ये—इस पद से महाविश्वासरूप अङ्ग तथा आत्मसमर्पण रूप अङ्गी का अनुसन्धान किया गया है।

नश्यताम्—पाप ताप शीघ्र नष्ट करें।

त्वाम्वृणे—अनुग्रहैकरूपा अपनी माता श्रीजी की हम परमपद की प्राप्ति के लिये प्रार्थना करते हैं।

"चन्द्रां प्रभासाम्"—इस मन्त्र के अर्थों का अनुसन्धान कर श्रीजी की शरणागति करनी चाहिये ऐसा पूर्वाचार्यों का मत है।

श्रीसूक्त के **'आदित्यवर्णे'**— इत्यादि छठे मन्त्र से माया आदि विघ्नों के नाश के लिये प्रार्थना की गई है।

'उपैतु माम्'— इस सप्तम मन्त्र से समस्त ऐश्वर्य, विद्यादि की प्राप्ति के लिये श्रीजी से प्रार्थना की गई है।

'क्षुत्पिपासाम्'– इस आठवें मन्त्र से विषयों की अभिलाषा आदि विरोधिस्वरूपों को दूर करने के लिये श्रीजी से प्रार्थना की गई है ।

गन्धद्वाराम्— इस नवम मन्त्र से अलक्ष्मी आदि को अपने गृह से दूर करने के बाद पुनः सर्वेश्वरी श्रीकिशोरीजी का आवाहन करते हैं ।

'गन्धद्वाराम् दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम् ।
ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम् ॥'

गन्धद्वाराम्—श्रीजी के भवन का द्वार निरन्तर दिव्य सौरभ से सुरभित रहता है, क्योंकि अनन्त दिव्यसौगन्ध्य का वे आश्रय हैं। छान्दोग्योपनिषद् में 'सर्वगन्धः सर्वरसः' इस मन्त्र से भगवान् को सभी गन्धों एवं रसों का आश्रय कहा गया है। इसी प्रकार श्रीजी को भी समस्त गन्धों का आश्रय समझना चाहिये। कठोपनिषद् में 'अशब्दमस्पर्श' इस मन्त्र से प्राकृत शब्द, स्पर्श, रूप,रस,गन्ध का निषेध कहा गया है। इस मन्त्रमें दिव्य गन्ध का वर्णन है। अतएव भगवद् पादारविन्द के सौगन्ध्य के आघ्राण [ग्रहण] से अव्यक्त ब्रह्म से प्रेम करने वाले सनकादिकों के मन एवं शरीर भी संक्षुब्ध [पुलकित] हो गये ।

श्रीमद्भागवत में स्पष्ट है कि सनकादि मुनीश्वर निरन्तर ब्रह्मानन्द में निमग्न रहा करते थे। किन्तु जिस समय भगवान् कमलनयन के चरणारविन्दमकरन्द से मिली हुई तुलसीमञ्जरी के गन्ध से सुवासित वायु ने नासिकारन्ध्रों के द्वारा उनके

अन्तःकरण में प्रवेश किया, उस समय वे अपने शरीर को संभाल न सके और उस दिव्य गन्ध ने उनके मन में भी क्षोभ उत्पन्न कर दिया। कल्प कल्पान्तरों से समाधि द्वारा पुञ्जीभूत ब्रह्मानन्द भी भगवद्पादारविन्दमकरन्दमिश्रित सुगन्धित वायु के सेवन से शिथिल हो गया। अथवा गन्ध शब्द से श्रीकिशोरीजी के आराधन के उपकरण स्वरूप, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, आदि सभी वस्तुएँ कही गयीं। श्रीजी की प्राप्ति में ये सभी वस्तुएँ द्वार [साधन] हैं।

दुराधर्षाम्—पूर्वोक्त समाराधन के उपकरणों से रहित पुरुषों के लिये श्रीकिशोरीजी की प्राप्ति असम्भव है। श्रीकिशोरीजी के दिव्यमहल में प्रवेश का अधिकार केवल भक्तों को ही है अन्य को नहीं।

नित्यपुष्टाम्—सभी काल, सभी देश, सभी वस्तुओं में सर्वदा परिपुष्ट रहती हैं अर्थात् नित्य विराजमान रहती हैं। अथवा प्रियतम के संश्लेषजन्य आनन्द से पुष्ट रहती हैं।

करीषिणीम्— भक्तों के हृदय में भक्ति बीज बोने वाली तथा प्रभु को आकृष्ट करने वाली। भूमिनन्दिनी होने के कारण श्रीकिशोरीजी क्षमाशीला हैं। 'करीष' का अर्थ गोमय भी है, उसमें निवास होने के कारण भी श्रीजी को करीषिणी कहा जाता है।

ईश्वरीं सर्वभूतानाम्—ब्रह्मा, शिव, इन्द्रादि, देवगण, असुर, सिद्ध, गन्धर्व, मनुष्य आदि सभी प्राणियों एवं नित्य पार्षदों की श्रीकिशोरीजी ईश्वरी–नियन्त्रण करने वाली हैं। व्यापक अर्थ में

असु धातु से ईश्वर शब्द निष्पन्न होता है अतः सर्वभूतेश्वरी, सर्वभूतनियन्त्री एवं व्यापक रूप से सर्वत्र विराजमान रहने के कारण श्रीजी ईश्वरी कहलाती हैं।

'जगज्जननी श्रीलक्ष्मीजी भगवान् की नित्य अनपायिनी [नित्य संगिनी] हैं। जिस प्रकार भगवान् सर्वगत हैं उसी प्रकार श्रीजी भी हैं। हे अम्ब! आपसे तथा भगवान् से समस्त चराचर जगत् व्याप्त है' इत्यादि स्मृति वाक्यों का भी यहाँ अनुसन्धान करना चाहिये।

तामिह उपह्वये श्रियम्—पूर्व में दारिद्र्यादि दोषों से दूषित हमारा स्थान [गृह] अब उन दोषों के त्याग से श्रीदेवी के आगमन के योग्य है। पुरुषकार एवं साधनों से आश्रयणादि पूर्वोक्त गुणों एवं लक्षणों से युक्त श्रीजी का हम सर्वसमृद्धि के लिये आवाहन करते हैं।

यहाँ श्री शब्द की छह प्रकार की व्युत्पत्तियों [अर्थों] का भी अनुसन्धान करना चाहिये। अन्य सभी जीवों के आश्रयणीय, स्वयं भगवान्के आश्रय में रहने वाली,आश्रितों की प्रार्थना को स्वयं सुनने वाली,आश्रितों की प्रार्थना प्रभु को सुनाने वाली, आश्रितों के समस्त दोषों को नाश करने वाली, तथा चराचर जगत् को अपने गुणों से परिपुष्ट करती हैं। अतः हे जननि ! आपको सभी लोग 'श्री' कहते हैं।

इसमें 'ईश्वरी' का अर्थ है ब्रह्मा, शिव, इन्द्र, देवगण, असुरगण, सिद्ध गन्धर्व, मनुष्य आदि समस्त जीवों एवं नित्य-पार्षदों की श्रीजी ईश्वरी हैं।

'मनसः'--इस दशम मन्त्रसे सभी प्रकार की समृद्धि की प्रार्थना की गई है।

'कर्दमेन'--इस एकादश मन्त्र से कर्दमजी के घर में पुत्रीरूप से अवतीर्ण श्रीजी की प्रार्थना उन्हीं के द्वारा की गई है।

'आपः सृजन्तु'-- इस बारहवें मन्त्र से भगवान् के आराधन योग्य सामग्रियों की प्रार्थना की गई है।

'आर्द्राम्'--इस तेरहवें मन्त्र से देवता, असुर, मनुष्य आदि सभी के द्वारा आराध्य श्रीजी की प्रार्थना की गई है। पुनः

'आर्द्राम् पुष्करिणीम्'--इस चौदहवें मन्त्र से अत्यन्त आदर के कारण श्रीजी के पूर्व वर्णित वैभव का ही पुनः प्रतिपादन किया गया है।

'ताम्'–इस अन्तिम पन्द्रहवें मन्त्रसे प्रथम सूक्त के तात्पर्य का वर्णन करते हुये 'अनपगामिनी' श्रीजी का पुनः आवाहन किया गया है तथा प्रणिपातप्रसन्ना श्रीजगज्जननी श्रीजानकीजी की प्राप्ति के लिये प्रभु से प्रार्थना की गई है। श्रीभट्टारक स्वामी ने श्रीगुणरत्नकोष में 'अस्येशाना' इस एकही श्लोक के द्वारा समस्त श्रीसूक्त तथा पुरुषसूक्त का महातात्पर्य श्रीकिशोरीजी में ही है ऐसा वर्णन किया है। श्लोक का अर्थ इस प्रकार है–हे श्रीजी! इस जगत की ईश्वरी आप हैं, इस अर्थ को सूचित करने वाली– 'अस्येशाना जगतः' इस श्रुति से आपके जिस ऐश्वर्य का हम लोग अनुसन्धान करते हैं– उसी ऐश्वर्य का प्रतिपादन करने वाला 'हिरण्यवर्णां हरिणीम्' इत्यादि श्रीसूक्त सभी शाखाओं में पठित है जिस प्रकार पुरुषसूक्त सभी वेदों में पठित है उसी प्रकार

श्रीसूक्त भी सभी शाखाओं में पठित है। जिस प्रकार पुरुषसूक्त में 'पुरुष एवेदं सर्वम्' इत्यादि मन्त्रों से भगवान् का प्रतिपादन है तथा 'श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यौ' इस उत्तरानुवाक में भगवान् को आपका स्वामी कहा गया है। अन्य उपनिषदों में आपके स्वामी होने से भगवान् की महिमा का वर्णन करना आपकी ही महिमा है। क्योंकि श्रीपतित्व सीतापतित्व आदि आपके सम्बन्ध से ही भगवान् की महिमा का वर्णन किया गया है। जिस प्रकार सामान्य वाचक शब्दों का विशेष में पर्यवसान होता है इस नियमानुसार सद्, ब्रह्म, आत्मा, नारायण आदि सामान्य शब्द छागपशुन्याय से सामान्य विशेष भाव के अनुसार विशिष्ट देवता श्रीनारायण में अन्वित [पर्यवसित] होते हैं उसी प्रकार श्रद्धा, मेधा, विष्णु-पत्नी, श्री आदि सामान्य शब्द पूर्वोक्त न्याय के अनुसार विशिष्ट देवता श्रीलक्ष्मीजी में पर्यवसित होते हैं।

कुछ लोग सन्देह करते हैं कि यदि श्रीजी को भगवान् की भाँति सर्वतन्त्र स्वतन्त्र सर्वेश्वर रूप में स्वीकार कर लिया जायगा तो सभी वेद शास्त्रों में जो एक ही ईश्वर के परत्व का वर्णन है उसकी सङ्गति नहीं होगी— शास्त्रों का समन्वय भी न होगा इत्यादि। इस शङ्का का समाधान करते हुये श्रीसूक्त भाष्य संग्रह में श्रीरङ्गनाथमुनि कहते हैं कि— यह सन्देह उचित नहीं है—यदि भगवान् एवं श्रीजी की प्रवृत्ति एक दूसरे की इच्छा के विरुद्ध होती अथवा दोनों पृथक्-पृथक् होकर जगत के सृष्टि आदि कार्य करते तब दो ईश्वरों के प्रतिपादन होने में वेदशास्त्रों की असंगति होती। अर्थात् भिन्न स्वरूप गुण वाले पृथक्--पृथक्

दो स्वतन्त्र ईश्वरों के प्रतिपादन करने पर असङ्गति होती किन्तु-यहाँ तो दोनों के लिये दम्पति शब्द का प्रयोग किया गया है अतः दोनों एक दूसरे की इच्छा के पूरक हैं। जगत् की रचना में इन दोनों की पृथक्-पृथक् प्रवृत्ति नहीं है क्योंकि इन दोनों में परस्पर एक दूसरे के प्रति प्रधान अप्रधानभाव का अभाव है।

ऐसी दशा में सभी शास्त्रों के तात्पर्य का समन्वय इन दोनों में हो जाता है, तथा सबकी सङ्गति भी हो जाती है। समस्त वेद शास्त्रों में एक ईश्वर का प्रतिपादन तो किया गया है किन्तु ईश्वर एक व्यक्ति है ऐसा प्रतिपादन नहीं किया गया। पुरुषसूक्त श्रीसूक्त आदि मन्त्रों में दोनों को समान रूप से सर्वेश्वर कहा गया है। फिर 'इन दोनों' में एक को ईश्वर मानें एक को नहीं यह सम्भव नहीं, इन दम्पति की एक दूसरे की इच्छा के विरुद्ध प्रवृत्ति नहीं है,दोनों सानुकूल हैं अतः शास्त्रों का समन्वय युक्तियुक्त है। 'तदैक्षत बहुस्याम् प्रजायेय' इत्यादि श्रुतियों में भगवान् ने सृष्टि की इच्छा की तब भगवान् की इच्छा में श्रीजी की भी इच्छा माननी होगी क्योंकि दोनों की इच्छा एक है पृथक् नहीं। पति पत्नी के परस्पर एक होने पर भी पति की प्रधानता होती है। इस सिद्धान्त के अनुसार भगवान् का मुख्य-रूप से वर्णन करने में श्रीजी का वर्णन होता है। ऐसी दशा में एक ही ईश्वर का सिद्धान्त यहाँ सुसङ्गत है। इस प्रकार भगवान् के ऊपर किसी दूसरे के नियन्त्रण का अभाव होने से उनके ऐश्वर्य अन्य उत्कर्ष की सीमा से रहित हैं। अर्थात् भगवान् से अधिक किसी दूसरे का ऐश्वर्य नहीं है। उसी प्रकार श्रीकिशोरीजी के

ऊपर भी किसी दूसरे का नियन्त्रण नहीं है अतः उनका भी ऐश्वर्य निरवधिक [सीमारहित] है। इस विवेचन में प्रमाण यही है कि एक दूसरे के ऐश्वर्य एक दूसरे की अपेक्षा विषम नहीं है। दोनों का ऐश्वर्य समता की तुला [तराजू] पर समान रूप से खरा उतरता है। एक दूसरे के ऐश्वर्य दूसरे के बाधक भी नहीं हैं।

अतः सर्वेश्वर यह वचन दोनों के लिये समान रूप से व्यवहृत होता है। यहाँ कुछ लोग एकेश्वरवाद का समर्थन करते समय ऐसा कहते हैं कि एक ही परतत्त्व समस्त जगत् के कारण स्वरूप सृष्टि आदि कार्य समूह सम्पादन, तथा लीलारस अनुभव केलिए दो रूपों में विभक्त हो जाते हैं तथा सृष्टि आदि का कार्य तथा लीलारस अनुभव–दोनों को समाप्त कर पुनः वही एक अखण्ड-स्वरूप में परिणत हो जाते हैं। उनके मत में युगलरूप सर्वदा एकरस विराजमान नहीं रहता अपितु सृष्टि आदि कार्य सम्पादन के लिये कुछ काल के लिये ही प्रकट होता है। वास्तव में ऐसी शङ्का को यहाँ कोई अवकाश नहीं है। ऐसे लोगों का सन्देह भी श्रीजी के साथ भगवान् एक हैं इस एकेश्वरवाद के प्रतिपादन से समाप्त हो जाता है। श्रीसूक्त तथा पुरुषसूक्त में जो इन दोनों को सभी प्राणियों का ईश्वर कहा गया है यह सर्वथा उचित है। अतः एकेश्वरवाद को स्वीकार करनेपर भी युगलरूप सभी कालों में एकरस विद्यमान रहता है यह वेद शास्त्र सम्मत तथा युक्ति-युक्त है। स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराजने भी श्रीरामायण मीमांसा में मङ्गलाचरण करते हुए श्रीसीताराम युगल को एक ही तत्त्व स्वीकार किया है —

'सौन्दर्यसारसर्वस्वं माधुर्यगुणबृंहितम् ।
ब्रह्मैकमद्वितीयं तत् तत्त्वमेकं द्विधा कृतम् ॥
वेदादिशास्त्रसंवेद्यं सीतारामस्वरूपकम् ।
सरहस्यं सतां सेव्यमद्भुतं प्रणमाम्यहम् ॥

वास्तव में शास्त्रों की सङ्गति तभी होगी जब इन दोनों दम्पति को एक ही ब्रह्मतत्व मानकर वर्णन किया जायगा। रामायण में भी श्रीहनुमान्जीने श्रीसीतारामजी को परस्पर रूप गुणादि में तुल्य कहा है-जैसा श्रीसीताजी का श्रीविग्रह एवं अङ्ग प्रत्यङ्ग की सुन्दरता है वैसे ही श्रीराघवेन्द्र के भी श्रीविग्रह एवं अङ्ग-प्रत्यङ्ग की सुन्दरता है।

अतः श्यामनयना श्रीकिशोरी जी श्रीरामजी के ही योग्य हैं। इन दोनों का पारस्परिक अनुराग भी अदृष्टपूर्व एवं अलौकिक है। इस बात का 'अस्याः' इस श्लोक से वर्णन करते हैं— श्रीकिशोरीजी का मन श्रीराम में प्रतिष्ठित है इसीलिये श्रीराघवेन्द्र जीवित हैं तथा श्रीराम का मन श्रीकिशोरीजी में प्रतिष्ठित है, इसीलिये वे इतने समय तक **प्राणधारण** किये हैं। इन दोनों का मन परस्पर एक दूसरे में सन्निहित नहीं होता तो एक मुहूर्त भी दोनों का जीवन असम्भव था। शील,अवस्था, आचरण आदि में भी दोनों की समानता 'तुल्यशीलवयोवृत्तां' श्लोक से कही गयी है। शील का अर्थ यहाँ स्वभावहै। श्रीरामजी का मन श्रीकिशोरी जी में तथा श्रीकिशोरीजी का मन श्रीरामजी में सन्निहित है। इस प्रक्रिया के द्वारा दोनों का स्वभाव तुल्य है। अवस्था में भी एक दूसरे के अनुरूप हैं अर्थात् षोडषवार्षिक श्रीरामजीके अनुरूप

द्वादशवार्षिकी श्रीकिशोरीजी हैं । चरित भी दोनों का समान है। श्रीरामजी की दृष्टि में दोषयुक्त शरणागत भी ग्राह्य है एवं श्रीकिशोरीजी की दृष्टि में पापी हो या पुण्यात्मा अथवा वध के योग्य हो, महापुरुषों को तो ऐसे लोगोंपर कृपा ही करनी चाहिये क्योंकि ऐसा एक भी जीव नहीं है जो सर्वथा पाप से रहित हो यह चरित प्रसिद्ध है। कुल को अभिजन कहतेहैं अर्थात् रघुकुल एवं निमिकुल दोनों ही एक दूसरे के अनुरूप हैं । लक्षण का अर्थ है सामुद्रिक लक्षणों से युक्त अर्थात् सामुद्रिक शास्त्रों में सार्वभौम लक्षणों से युक्त पुरुष श्रेष्ठ की भार्या को जिन सामुद्रिक लक्षणों से युक्त होना चाहिये श्रीकिशोरीजी वैसी ही हैं । तुल्य शब्द यहाँ अनुरूप-वाचक है । अर्थात् श्रीरामजी के शील, वय चरित्र आदि के अनुरूप श्रीकिशोरीजी हैं । इसीलिये वैदेही श्रीराघव के योग्य एवं श्रीराघव वैदेही के अनुरूप हैं ।

लोक में सौन्दर्य गुण आदि सम्पन्न पुरुष को सौन्दर्य आदि सर्वगुण सम्पन्न भार्या नहीं मिलती तथा सौन्दर्यादि गुणों से युक्त स्त्री को सौन्दर्यादि सर्वगुण सम्पन्न पति की प्राप्ति नहीं होती किन्तु इन दोनों को तो सब कुछ समानरूप से प्राप्त है, अतएव श्रीहनुमान्जी विस्मित हैं । 'असितेक्षणा' यह अधिक विशेषण देने से श्रीरामजी की अपेक्षा श्रीसीताजी के नेत्र अधिक सुन्दर हैं इसकी पुष्टि होती है । इसलिये श्रीरामजी ने कहा है कि काले नेत्र वाली श्रीकिशोरीजी के बिना मैं एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकता । केवल सौन्दर्य आदि की ही अधिकता श्रीकिशोरीजी में है ऐसी बात नहीं किन्तु प्रेमाधिक्य भी है ऐसा श्रीहनुमान्जी ने

विचारकर निश्चय किया। श्रीहनुमान्‌जी कहतेहैं कि श्रीकिशोरी जी के बिना श्रीरामजी जीवित हैं यह उनके लिये अत्यन्त दुष्कर [कठिन] कार्य है। माल्यवान् पर्वत पर जब श्रीरामजी श्रीसीताजीके विरहमें विलाप कर रहे थे तब उसको सुनकर श्रीहनुमान्‌जी आश्चर्यचकित होकर सोचने लगे कि श्रीरामजी श्रीवसिष्ठजी के शिष्य हैं, किसी स्त्री के वियोग में इस तरह शोकपरायण होना कहाँ तक उचित है ? अपने उत्कृष्ट वैराग्य के कारण श्रीरामजी के प्रति अपने मन में परिहास भी किया किन्तु विशेषज्ञ होने के कारण श्रीकिशोरीजी के असाधारण सौन्दर्य प्रेम को देखकर अब यही निश्चय कर रहे हैं कि श्रीकिशोरीजी के बिना श्रीरामजी जीवित हैं, यह उनके लिये अत्यन्त दुष्कर कार्य है। श्रीकिशोरीजी से विलग होकर श्रीरामजी पूर्ण स्वस्थ हैं तथा अपने शरीर को धारण किये हुये हैं यह अत्यन्त कठिन कार्य है। यद्यपि श्रीरामजी प्रभु हैं, हाथी, घोड़ों आदि को शिक्षा देने में, राज्यपालन में पूर्ण समर्थ हैं-इन विद्याओं में पारङ्गत हैं किन्तु अभी प्रणयधारा में प्रथमांश का भी उपभोग नहीं किया है। अर्थात् प्रेम की पाठशालामें उन्होंने एक भी कक्षा उत्तीर्ण नहीं की है एक भी पुस्तक नहीं पढ़ी है इसीलिये श्रीकिशोरीजी से पृथक् होकर भी जीवित हैं। श्रीकिशोरीजी का शरीर तो श्रीरामजी के परतन्त्र है। अतः उन्होंने अपना शरीर धारण कर रखा है यह अनुचित नहीं है, ऐसा श्रीहनुमान्‌जी का अभिप्राय है-श्रीगोविन्दराज का यह मत है।

इससे श्रीसीतारामजी का परस्पर में समान ऐश्वर्य, पृथक् इच्छाओं का अभाव, समान हृदय, एवं दोनों का सर्वेश्वर होना

कहा गया है। चतुश्श्लोकी में श्रीयामुनाचार्य स्वामीजी ने भी श्रीजी की अवधिरहित महिमा का प्रतिपादन किया है– हे सभी लोकों की ईश्वरी ! लोकनाथ की प्रिये ! आपकी असीम, स्वतः सर्वदा अनुकूल स्वभाव वाली महिमा को परिच्छेद करके जानना, सर्वशक्तिमान् आपके पति के लिये भी अपनी महिमा की तरह कठिन है। यह जानते हुये भी निर्भय होकर आपकी स्तुति में प्रवृत्त हूँ। क्योंकि मैं आपका दास हूँ, प्रपन्न हूँ और आपकी दया को भी जानता हूँ। चतुश्श्लोकी के भाष्य में श्रीवेदान्तदेशिक स्वामी ने श्रीजी को दोनों विभूतियों का, श्रीजी को शेषी तथा भगवान् के अत्यन्त अनुकूल होना आदि श्रीजी की महिमा है ऐसा वर्णन किया है। जब श्रीजी की महिमा की सीमा ही नहीं है तब सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, भगवान् के लिये भी सीमित रूप से न जानना कोई दोष नहीं है। यद्यपि प्रभु सर्वसमर्थ हैं श्रीदेवी के वल्लभ हैं फिर भी सीमितरूप से श्रीजी की महिमा जानने में असमर्थ हैं। असीमितरूप से जानने में समर्थ हैं। श्रीस्तव में श्रीवत्साङ्कमिश्रजी ने लिखा है कि श्रीजी की महिमा की अवधि न श्रीजी जानती हैं, न प्रभु जानते हैं। वे कहते हैं– हे देवि! आपकी महिमा की अवधि न आप जानती हैं, न भगवान् ही जानते हैं, तथापि आप दोनों की सर्वज्ञता की कोई हानि नहीं है क्योंकि जो वस्तु नहीं है उसे न जानना सर्वज्ञता के अनुरूप ही है।

यदि कोई वस्तु नहीं है तो उसे न जानना ही वास्तविक ज्ञान है। जो नहीं है उसे यह वस्तु है यह जानना अज्ञान है। आकाश में कमल नहीं होता है किन्तु कोई यह कहे कि आकाश कमल

को मैं जानता हूँ वह इतनी मात्रा में हैं तथा उसकी सुगन्धि इस प्रकार की है तो ऐसा कहने वाला पुरुष भ्रान्त कहा जाएगा।

श्रीस्तव में श्रीवत्साङ्कमिश्रजी ने यह भी कहा है कि श्रीजी के मुख को देखकर, उनके संकेत के अनुसार ही भगवान् सृष्टि-आदि समस्त कार्य करते हैं। श्रीजी के बिना भगवान् की लीला रसमयी नहीं होती है, भगवान् की लीला में रस का संचार करने वाली एकमात्र श्रीजी ही हैं। शरणागतिगद्य में भगवान् श्रीरामानुजाचार्यजी ने श्रीजी के स्वरूप, रूप, गुण, वैभव आदि का वर्णन इस प्रकार किया है। भगवान् श्रीनारायण के अनुकूल स्वरूप, रूप, गुण, वैभव, ऐश्वर्य, शील, आदि अनवधिक अतिशय असंख्येय कल्याणगुणगणों से युक्त, पद्मवन में निवास करने वाली 'षडैश्वर्यसम्पन्ना' भगवती श्रीदेवी भगवान् से नित्य संश्लिष्ट समस्त दोषों से रहित, 'देवाधिदेव' भगवान् की पटरानी, समस्त जगत् की माता, हमारी माता, अशरणशरण श्रीजी हैं।

हम अनन्यशरण होकर उनकी शरण ग्रहण करते हैं। चतुश्श्लोकी में श्रीजी को समस्त पुरुषार्थों का हेतु, उनके कृपा-कटाक्षसुधासिंचन से ही विश्व की रक्षा, उनके कृपाकटाक्ष के अभाव में ही तीनों लोकों का संहार आदि कहा गया है। हे देवि! भूमि, आकाश और पाताल में रहने वाले जीवगणों पर जब तक आपका कृपाकटाक्ष नहीं पड़ा था तब तक नष्ट अर्थात् वे सभी अचेतन के समान पड़े थे। आपका करुणानिरीक्षणामृत जब उन पर पड़ा तब से उनका अभ्युदय हुआ। संसार सुख का अनुभव करने में, आत्मानुभव करने में अर्चिरादि मार्ग से मोक्ष

तक पहुँचने में जीवों को जो सुख होता है, वह सुख राजीव-लोचन श्रीराघवेन्द्र की प्राणवल्लभा के अनुग्रह के बिना सर्वथा असम्भव है।

श्रीलोकाचार्य स्वामीजी ने श्रीवचनभूषण में श्रीजी के वैभव का सम्यक् प्रतिपादन किया है, उन्होंने लिखा है कि– इतिहास श्रेष्ठ श्रीरामायणके द्वारा कारागारमें निवास करने वाली श्रीजी के वैभव का वर्णन करते हैं– इस सूत्र का व्याख्यान करते हुये श्रीस्वामी बरबरमुनिजी ने कहा है कि–यहाँ श्रीजी का नाम न लेकर 'कारागृह में निवास करने वाली' यह कहा गया है, इससे उनकी अहैतुकी दया का वर्णन किया गया है। शरणागतिगद्य में स्वामी श्रीरामानुजाचार्य ने– देवदेवदिव्य महिषी, अर्थात् देवाधिदेव सर्वेश्वर भगवान् की दिव्य महिषी कहा है, इस अपने उत्कर्ष को श्रीजी ने नहीं देखा तथा कारागार में निवास करने से जो अपकर्ष हुआ उसकी ओर भी नहीं देखा। देवस्त्रियों को कारागार से मुक्त करने केलिये उन्होंने स्वयं कारागृह में निवास किया, यह कार्य उन्होंने दयापरवश ही किया। जिस प्रकार पुत्र कूप में गिर जाता है तो उसकी माता भी उसको निकालने के लिये उसके साथ कूप में कूद पड़ती है, उसी प्रकार संसार कूपमें गिरे हुये जीवों को देखकर स्वयं अवतार लेकर इस संसार के दुःखों का अनुभव कर जीवों की रक्षा की। क्योंकि जीव-मात्र की आप निरूपाधिक जननी हैं। इस मातृत्व सम्बन्ध के कारण श्रीजी में जो निरतिशय [अत्यधिक] वात्सल्य गुण है उसी का प्रकाशन श्रीमद्रामायण में सर्वत्र देखने को मिलता है।

[लंका स्थित अशोकवाटिका में निवास करने से तथा सापराध राक्षसियों पर अहैतुकी कृपा करने से श्रीजी के निरूपाधिक वात्सल्यगुण का प्रकाशन हुआ है] महर्षि वाल्मीकि ने समग्र रामायण में इन्हीं के वैभव का प्रतिपादन किया है। इसीलिये उन्होंने समग्र रामायण को श्रीसीताजी का महान् चरित्र कहा है। श्रीराघवेन्द्र की अपेक्षा अपराधियों की रक्षा में तत्पर रहने के कारण श्रीरामचरित से श्रीसीताचरित का वैशिष्टच कहा गया है इसी विचार से महर्षि ने श्रीसीताचरित को महद् विशेषण प्रदान किया– 'काव्य रामायणं कृत्स्नं सीतायाश्चरितं महत्' ।

'ईश्वरीं सर्वभूतानाम्' सभी प्राणियों की ईश्वरी, तथा 'हेमाभया द्विभुजया' कनकवर्णा,दो भुजाओं वाली,इत्यादि श्रुतिवाक्यों से ही केवल श्रीसीताजीके वैभव का प्रकाशन नहीं हुआ है किन्तु श्रीमद्रामायण भी इन्हीं के वैभव के प्रकाशन के कारण असाधारण उत्कर्ष प्राप्त कर सकी है।

श्रीभट्टारक स्वामीजी ने भी कहा है कि–हे जगज्जननि! यह उपनिषद् ही केवल शपथ पूर्वक भुजा उठाकर श्रीसूक्त की भाँति आपको जगत् की ईश्वरी नहीं कहती है किन्तु श्रीरामायण को भी आपके चरित से ही उत्कृष्ट जीवन प्राप्त है। हे जननि ! स्मृतियों के प्रवर्तक पराशरादि जितने भी महर्षिगण हैं, वे सभी भारतादि विष्णुपुराणादिकों के सहित वेदों को आपकी महिमा में प्रमाण मानते हैं। इस श्लोक में 'परम्' इस क्रिया विशेषण में श्रीसीताचरित की उत्कृष्टता कही गई है। श्रीराम आदि

के चरित से तो श्रीरामायण जीवित है। किन्तु उत्कृष्ट जीवन तो श्रीसीताचरित से ही प्राप्त है। वास्तव में उत्कृष्ट जीवन ही सफल जीवन है।

श्रीलोकाचार्य स्वामी ने सूचित किया है कि पुरुषकार के समय कृपा, पारतन्त्र्य, अनन्यार्हत्व, ये तीन **गुण** विशेष रूप से अपेक्षित होते हैं। दूसरे के दुःख को नहीं सहन करना ही कृपा है। स्वामी के अधीन होना ही परतन्त्रता है, प्रभु को छोड़कर अन्य विषयों की योग्यता न होना ही अनन्यार्हत्व है। जीवों को संसार में दुःखी देखकर उनके दुःखों को न सहकर भगवान् के साथ उन जीवों को मिलाने का यत्न करने के लिये कृपा की आवश्यकता है। स्वतन्त्र प्रभु को वश में करते समय अनुकूलता की आवश्यकता होती है। इसके लिये भगवत्परतन्त्रता अपेक्षित है।

जब भगवान् यह सोचने लगते हैं कि श्रीजी हमसे पृथक् किसी अन्य का चिन्तन भी नहीं करती हैं। अन्य किसी को अपने योग्य नहीं समझती हैं। मेरे ही उत्कर्ष को बढ़ाने में लगी रहती हैं। तथा मेरे हित केलिये परामर्श देती रहती हैं, अतः यह जो कहेंगी वही करूँगा। ये तीनों गुण पुरुषकार के लिये अवश्य अपेक्षित हैं। श्रीजी में ये तीनों **गुण** विद्यमान हैं।

श्रीरामजी की कृपा की अपेक्षा श्रीमैथिली की कृपा क्यों उत्कृष्ट है? इस जिज्ञासा का समाधान करते हुये कहते हैं— भगवान् निरंकुश स्वतन्त्र, निग्रह [दण्ड] अनुग्रह, दोनों में समर्थ हैं। जीवों के कर्मों को तौलकर तथा टुकड़े-टुकड़े कर भोग कराते हैं। अतः उनकी कृपा उनकी निरंकुश स्वतन्त्रता में डूबी

रहती है, अतः कभी–कभी विशेष दशा में ही प्रकट होती है। श्रीकिशोरीजी का श्रीविग्रह कृपामय है। प्रभु की कृपा उनकी स्वतन्त्रता से थोड़ी ढकी रहती है। कृपा को ढकने वाले स्वातन्त्र्य आदि गुण न होने से इनकी कृपा सदा एकरस बनी रहती है। अतः इनकी कृपा धारा सीमा [मर्यादा] का अतिक्रमण कर जीवों पर सदा बरसती रहती हैं।

भगवान् के विषय में इनकी परतन्त्रता तथा अनन्यार्हता, ये दोनों गुण केवल स्वरूपनिष्ठ ही नहीं है किन्तु पत्नी होने के कारण भी हैं। श्रुति कहती है– भूमि देवी तथा श्रीजी आपकी पत्नी हैं। श्रीकिशोरीजी का प्रथम विश्लेष उनकी कृपा के प्रकाशन के लिये ही हुआ।

इस प्रसङ्ग का सम्बन्ध जगज्जननी श्रीजानकीजी की लंका यात्रा से है। रावण के कारागार में अनेक देवकन्यायें यातनायें भोग रही थीं, उन देवकन्याओं को बन्धन से मुक्त कराने केलिये रावण के कारागार में श्रीकिशोरीजी ने निवास किया। स्वामी श्रीपराशरभट्ट कहते हैं– हे माता मैथिलि ! ताजा अपराध करने वाली उन राक्षसियों की श्रीहनुमान्जी से रक्षाकर आपने श्रीराघवेन्द्र की गोष्ठी को अत्यन्त लघु बना दिया क्योंकि मैं आपका हूँ ऐसा कहने पर ही काक जयन्त तथा विभीषण को श्रीराघवेन्द्र ने अभय प्रदान किया था किन्तु आपने तो शरणागति के बिना ही उन सद्यः अपराधी राक्षसियों की रक्षा की, अतः आपकी अहैतुकी कृपा हमारे सदृश महान् अपराधियों को सुखी करे।

[अशोकवाटिका में श्रीकिशोरीजी को क्रूर राक्षसियाँ अनेक प्रकार के भय दिखाकर पीड़ा पहुँचा रही थीं। रावण पराजित

हुआ एवं श्रीराघवेन्द्र विजयी हुये ऐसा स्वप्न जब त्रिजटाने देखा तब भय के कारण सभी काँपने लगीं, उन सभी को अभय प्रदान करती हुई श्रीमैथिली ने कहा कि हम तुम सबकी रक्षा करेंगी। यद्यपि इन राक्षसियों ने श्रीजानकीजी की शरणागति नहीं की थी, अपनी ही ओर से इन्होंने अभय प्रदान किया। रावण वध के पश्चात् जब श्रीहनुमान्जी शुभ समाचार सुनाने के लिये आये तब उन्होंने इन राक्षसियों का चित्रवध करने की इच्छा प्रकट की, उस समय जगज्जननी श्रीजानकीजी ने श्रीहनुमान्जी के साथ वार्तालाप कर उनके दोषों का गुण के रूप में वर्णन किया। उन्होंने श्रीहनुमान्जी से कहा कि रावण के वश में होकर अपराध करने वाली इन दासियों पर कौन कोप कर सकता है? तथा यह भी कहा कि दुर्बल होकर मैं सबके अपराधों को सहन करती हूँ, अर्थात् दूसरों के दुःख को देखकर सहन करने योग्य कठिन चित्त मेरा नहीं है। गुणज्ञ पुरुषों को अपराधियों के ऊपर कृपा ही करनी चाहिये, क्योंकि अपराध के बिना कोई नहीं है। इस प्रकार कहकर श्रीहनुमान्जी को भी दयामय बनाकर उनसे ताजे अपराध करने वाली राक्षसियों की रक्षा की। इस प्रसङ्ग में जगज्जननी श्रीजानकीजी की अहैतुकी कृपा का पूर्णरूप से प्रकाशन हुआ है। इस अहैतुकी कृपा के प्रकाशन के लिये ही प्रथम विश्लेष हुआ है]।

यहाँ कतिपय महानुभाव कहते हैं– "श्रीमैथिली जनकनन्दिनी हाथ जोड़कर प्रणाम करने मात्र से ही प्रसन्न होती हैं" श्रीरामायण के इस वचन से श्रीमैथिली की क्षमा भी प्रणिपात

[शरणागति] की अपेक्षा रखती हैं अतः उसे अहैतुकी नहीं कहा जा सकता, वास्तव में उनका यह विचार या कथन अप्रामाणिक है। जैसा कि सुन्दरकाण्ड में वर्णित है। कल्याणमय स्वप्नदर्शन के पश्चात् त्रिजटा ने राक्षसियों से कहा—श्रीमैथिली के उत्कर्ष का समय आ गया है तुम लोग इनको पीड़ा न पहुँचाओ, प्रत्युत् इनकी शरण में जाओ। रावणवध के पश्चात् तुम लोगों की रक्षा करेंगी। त्रिजटा के कहने पर राक्षसियों ने कहा— महान् अपराध करने वाली हम लोगों को रक्षा श्रीमैथिली कैसे करेंगी? इस शङ्का का समाधान करती हुई त्रिजटा ने कहा कि मधुर मिथिला देश में उत्पन्न होने के कारण तथा श्रेष्ठ श्रीजनकवंश में उत्पन्न होने के कारण श्रीमैथिली हाथ जोड़ने-मात्र से प्रसन्न हो जाती हैं, यह त्रिजटा का कथन उसकी बुद्धि के अनुसार ही था। प्रणिपात से प्रसन्न होना श्रीमैथिली का धर्म नहीं है, इसी-लिये रावणवध के पश्चात् भी उससे अनभिज्ञ राक्षसियों ने जब मैथिली को कष्ट दिया तब शास्त्रीय एवं युक्तियुक्त वचन से श्रीहनुमान्जी को समझाकर उनसे राक्षसियों की रक्षा की। तथा उनका ही अपराध करने वाला काकासुर [जयन्त] जब प्रभु के श्रीचरणों में उल्टा गिरा तब श्रीकिशोरीजी ने उसके शिर को उठाकर श्रीरामपादारविन्द में लगाकर सीधा कर दिया, अतः श्रीमैथिली की क्षमा हेतुरहित है—प्रणिपात परक नहीं है।

इन्हीं भावों को श्रीवीरराघवाचार्यजी ने 'श्रीगुणसुधा-सारलहरी' स्तोत्र में निम्नांकित श्लोकों से व्यक्त किया है— हे जननि ! श्रीभट्टारकस्वामी ने आपकी स्तुति

करते हुये आपकी क्षमा को हेतुरहित बतलाया है किन्तु कुछ अनभिज्ञ जड़बुद्धि कहते हैं कि श्रीमिथिलेशनन्दिनी भी प्रणिपात [प्रणाम] से प्रसन्न होती हैं अतः उनकी क्षमा भी शरणागतों पर होती है। त्रिजटा ने अपनी बुद्धि से ही कहा था कि श्रीमैथिली शरणागति करने पर प्रसन्न होती हैं। हे राजीवलोचन! श्रीरामप्राणवल्लभे? वास्तव में शरणागति करने पर प्रसन्न होना आपका धर्म नहीं है अतएव हिंसारत एकाक्षी प्रभृति ताजे अपराध करने वाली उन राक्षसियों की हनुमान्जी से रक्षा की। यदि शरणागति करने वाले जीवोंपर ही आपकी कृपा होती तो इन राक्षसियों की रक्षा कैसे होती क्योंकि इन लोगों ने आपकी शरणागति नहीं की थी। अतः श्रीमैथिली की कृपा प्रणिपात परतन्त्र नहीं है किन्तु सर्वथा आकस्मिकी है। इसी कृपा के प्रकाशनार्थ प्रथम विश्लेष अर्थात् लङ्का यात्रा हुई।

द्वितीय [मध्यम] विश्लेष का यही प्रयोजन है कि भगवान् श्रीराम मुझे अपने अन्तःपुर में रखें या वन में भेज दें, मैं तो सदा ही उनके मनोऽनुकूल कार्य करूँगी। श्रीराम की पत्नी होने के कारण श्रीजानकीजी ने मध्यम विश्लेष से स्वपत्नित्वप्रयुक्त पारतन्त्र्य का प्रकाशन किया। विवासित होकर महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में पहुँचने पर श्रीलक्ष्मणजी से श्रीजनकनन्दिनी ने कहा—हे सुमित्रानन्दन ! मैं आज ही इस गङ्गा की धारा में इस देह का विसर्जन कर देती किन्तु मेरे स्वामी श्रीराम अपने राजवंश से वंचित हो जायेंगे, इस वचन से श्रीजानकीजी की पतिपरतन्त्रता का सुस्पष्ट प्रकाशन हुआ है।

तृतीय विश्लेष अनन्यार्हत्व [अनन्यता] प्रकाशनार्थ हुआ। रावणवध के पश्चात् श्रीरामभद्र की सन्निधि में [विराजमान दशा में] ही उनसे अलग होकर अपने जन्मगृह [भूविवर] में प्रवेश करना तृतीय विश्लेष कहा जाता है। श्रीमद्रामायण में श्रीसीतारामजी दोनों ने कहा है-'जिस प्रकार सूर्य से उनकी प्रभा भिन्न नहीं है उसी प्रकार श्रीराघव से मैं भिन्न नहीं हूँ।' यह श्रीकिशोरीजी का वचन है श्रीराघवेन्द्र कहते हैं जिस प्रकार सूर्य की प्रभा सूर्य से पृथक् नहीं है उसी प्रकार मैं श्रीसीताजी से पृथक् नहीं हूँ। इस प्रकार श्रीयुगलसरकार परस्पर अनन्य हैं क्योंकि इसमें दोनों की एक सम्मति है तृतीय विश्लेष से इसी अनन्यार्हता का प्रकाशन किया गया है। [श्रीजानकीजी के अपने जन्मगृह में प्रवेश करने के पश्चात् श्रीराघवेन्द्र नर नाट्य का अभिनय करते हुये अत्यन्त व्याकुल हो गये वे चिरकाल तक रूदन करते हुये अश्रुधारा बहाते रहे। एक ओर श्रीकिशोरीजी के विश्लेष का शोक दूसरी ओर पृथ्वी पर क्रोध भी है। प्रभु विचार करते हैं कि रावण ने तो मेरी अनुपस्थिति में श्रीमैथिली का अपहरण किया था किन्तु इस समय तो मेरे देखते देखते ही श्रीकिशोरीजी अदृश्य हो गईं अतः मेरे मन में अभूतपूर्व शोक छा गया है। समुद्रपार लङ्कासे उनको लाने में जब मुझे विलम्ब नहीं हुआ तब वसुधातल से लाने में क्या विलम्ब होगा ? हे वसुधे देवि! आप मेरी प्रिया को शीघ्र ही प्रदान कर दें अन्यथा मेरे रोष का दर्शन आपको करना होगा। वैसे वाराह आदि अवतारों में आपको मेरे स्वरूप एवं सामर्थ्य का भलीभाँति ज्ञान हो

गया होगा। निश्चय ही आप मेरी सास हैं क्योंकि जब श्रीजनक जी फाँल हाथ में लेकर आपको जोत रहे थे तभी श्रीकिशोरीजी आपसे [पृथ्वी से] प्रकट हुईं, अतः या तो श्रीसीताजी को लौटा दें अथवा मुझे भी अपना विवर प्रदान करें। स्वर्ग हो या पाताल हम उन्हीं के साथ निवास करेंगे। यदि आप श्रीकिशोरीजी को नहीं लौटाती हैं तो पर्वतों एवं वनों सहित मैं आपका भेदन कर आपको नष्ट कर दूँगा। समग्र भूमि जलमय हो जायेगी। क्रोध एवं शोक से युक्त श्रीराघवेन्द्र ने जब पृथ्वी से इस प्रकार कहा तब देवताओं सहित ब्रह्मा वहाँ आकर श्रीरघुनन्दन से बोले–हे श्रीराम! आप सन्ताप न करें। हे शत्रुसूदन! आप अपने पूर्व-स्वरूप [भगवद्भाव] का स्मरण करें। हे महाबाहो! मैं आपके परमोत्कृष्ट स्वरूप का **स्मरण** नहीं दिला रहा हूँ किन्तु यह प्रार्थना कर रहा हूँ कि इस समय आप अपने वैष्णव स्वरूप का स्मरण करें। सती शिरोमणि श्रीसीताजी सर्वथा शुद्ध हैं। वे सदा से ही आपमें अनुरक्त रहती हैं। आपका आश्रय लेना ही उनका तपो-बल है। वे नागलोकगमन के ब्याज से आपके परमधाम में चली गयी हैं। 'स्वर्गे ते सङ्गमो भूयो भविष्यति न संशयः'।

अब पुनः साकेतधाम में आपकी उनसे भेंट होगी इसमें संशय नहीं है। यहाँ स्वर्ग का अर्थ साकेतधाम है। अथर्ववेद में अयोध्या का एक नाम स्वर्ग भी है। 'स्वर्गो ज्योतिषावृतः'।

ब्रह्माजी प्रभु से कहते हैं–अब इस सभामें मैं आपसे जो कुछ कहता हूँ उसपर ध्यान दीजिये। आपके चरित्र से सम्बन्ध रखने वाला यह काव्य जिसे आपने **श्रवण** किया है सब काव्यों में

स्वसूक्तीनां पात्रं रघुतिलकमेकं कलयतां,
कवीनां को दोषः स तु गुणगणानामवगुणः।
यदेतैर्निःशेषैरपरगुणलुब्धैरिव जग-
त्यसावेकश्चक्रे सततसुखसंवासवसतिः ॥

अपनी सूक्तियों का विषय एकमात्र रघुकुलतिलक श्रीराम को ही बनाने वाले बेचारे कवियों का क्या दोष है, यह तो उनके गुणगणों का ही अवगुण है कि जिन्होंने एक स्थान पर परस्पर मिलने के लोभ से केवल श्रीराम को ही अपना सतत सुखनिवास बना डाला। पूर्वोक्त विवेचन से भी अनन्यार्हत्व की पुष्टि होती है।]

अहैतुकी कृपा, पतिपरतन्त्रता, तथा अनन्यार्हत्व आदि गुणों के प्रकाशन केलिये ही अकारणकरुणावरुणालया श्रीमैथिली के तीन विश्लेष हुये हैं। अन्यथा श्रीराघवेन्द्रके साथ नित्य संयोग प्राप्त श्रीकिशोरीजी का कर्मपरवश साधारण जीवों की भाँति वियोग का और हेतु सम्भव नहीं। पुरुषकारता के उपयोगी गुण एवं पुरुषकारत्व के प्रकाशनार्थ ही श्रीकिशोरीजी का अवतार हुआ है। श्रीभट्टारक स्वामी ने कहा है—क्षमा, सौशील्य, औदार्य, कारूण्य, आश्रितवात्सल्य आदि गुण मुख्य रूप से श्रीसीतावतार में ही प्रकाशित हुये हैं— 'सीतावतारमुखमेतदमुष्ययोग्यम्'

संयोग वियोग दोनों दशाओं में श्रीकिशोरीजी के पुरुषकारत्व का प्रतिपादन श्रीलोकाचार्य स्वामी ने इस प्रकार किया है। जैसे संयोग दशा में श्रीराघवेन्द्र के वनगमन के समय बालस्वामी श्रीलक्ष्मणकुमार ने श्रीसीता सहित श्रीराम की शरणागति की है। 'अत्यन्त यशस्वी श्रीलक्ष्मणकुमार ने भ्राता महाव्रत

श्रीराघव के श्रीचरणों को पकड़कर श्रीसीताजी के समक्ष प्रभु से वन में साथ ले जाने की प्रार्थना की।' पञ्चवटी पहुँचने पर प्रभु ने श्रीलक्ष्मणकुमार से कहा—जल तथा छाया से परिपूर्ण किसी देश में अपनी सुख सुविधा के अनुकूल पर्णशाला की रचना करें। प्रभु की वाणी सुनते ही शरणागतिधर्ममर्मज्ञशिरोमणि श्रीलक्ष्मण-कुमार घबड़ा गये, उन्होंने भक्तिपरवश ऐसा अनुमान लगाया कि प्रभु ने मुझे स्वतन्त्र जानकर ऐसी आज्ञा दी है क्योंकि स्वामी की रुचि के समक्ष सेवक की रुचि की पूर्ति सेवाधर्म के विरुद्ध है यदि प्रभु कहते-मेरी रुचि के अनुकूल पर्णशाला का निर्माण करो तो यह मेरे सेवाधर्म के अनुकूल होता किन्तु उन्होंने तो कहा—कि अपनी सुख सुविधा के अनुकूल किसी स्थल में पर्णशाला का निर्माण करो।

'रमते यत्र वैदेही त्वमहं चैव लक्ष्मण !' इस प्रकार प्रभु के मुखारविन्द से जहाँ वैदेही का मेरा तथा आपके रमण योग्य, जल छाया युक्त स्थल हो वहाँ पर्णशाला का निर्माण करें श्रीलक्ष्मण कुमार ने अपना रमण श्रवण करते ही भयभीत होकर यह निश्चय कर लिया कि प्रभु ने मेरा परित्याग कर दिया। इस प्रकार भयभीत होकर पुनः श्रीकिशोरीजी सहित श्रीराघवेन्द्र की शरण ग्रहण की।

एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मणः संयताञ्जलिः।
सीतासमक्षं काकुत्स्थमिदं वचनमब्रवीत्॥
परवानस्मि काकुत्स्थ त्वयि वर्षशतं स्थिते।
स्वयं तु रूचिरे देशे क्रियतामिति मां वद'॥

'इस प्रकार श्रीराघवेन्द्र के वचन श्रवण कर करबद्ध होकर श्रीलक्ष्मणकुमार श्रीकिशोरीजी के समक्ष श्रीराम से बोले— स्वामिन्! मैं अनन्तकाल तक आपका परतन्त्र सेवक हूँ। आप परमधाम त्रिपादविभूति में विराजमान हों अथवा माधुर्य अवतारकालिक एकपादविभूति में अवस्थित हों मैं आपका सार्वकालिक परतन्त्र सेवक हूँ, अतः मेरे स्वरूप के अनुकूल ही आज्ञा देने की कृपा करें। आप अपने मनोऽनुकूल रुचिर एवं रमणीय देश में पर्णशाला बनाने की आज्ञा प्रदान करें। यहाँ 'सीतासमक्षम्' से श्रीसीताजी का पुरुषकारत्व एवं श्रीसीताविशिष्ट प्रभु की उपासना—दोनों बातें कही गयी हैं। अपने स्वरूपानुकूल पारतन्त्र्य लाभ के लिये बद्धाञ्जलि होकर प्रार्थना की उसके बाद श्रीकिशोरीजी के पुरुषकारत्व से पुरस्कृत होकर स्वापेक्षित [अपने मनोरथ के अनुकल] पारतन्त्र्य तथा युगल कैंकर्य को प्राप्त किया।

असुर प्रकृति के जयन्त ने काक रूपधारण कर जगज्जननी का अपराध किया तब स्वयं प्रभु ने उसपर क्रुद्ध होकर कहा कि पाँच मुख वाले क्रुद्ध सर्प के साथ खेलने का साहस कौन कर रहा है ? ऐसा कहकर उसके मस्तक के छेदन के लिये ब्रह्मास्त्र का प्रयोग कर दिया। वह पिता, माता, देवता एवं महर्षियों से परित्यक्त होकर तीनों लोकों की सम्यक् परिक्रमा कर [अपमानित होकर]उन्हीं की,शरणमें गया। इसप्रकार सर्वत्र भ्रमण करने के पश्चात् कहीं भी जब उसे कोई आश्रय नहीं मिला तब निराश्रय होकर प्रभु की शरण में गया उस समय श्रीकिशोरीजी के

पुरुषकार के कारण ही प्रभु ने उसकी रक्षा की। इस विषय का प्रतिपादन श्रीरामायण तथा पद्मपुराण में इस प्रकार है– 'सर्व-लोकशरण्य, शरणागतवत्सल श्रीराघवेन्द्र की शरण में आकर जब महापराधी जयन्त गिरा तब वध के योग्य होने पर भी ककुत्स्थनन्दन श्रीरघुनन्दन ने कृपाकर उसकी रक्षा की। 'कृपया पर्यपालयत्' इस श्लोक में कृपया का अर्थ है 'कृपारूपिण्या श्रा-सीतया पर्यपालयत्' कृपारूपिणो श्रीकिशोरीजी के द्वारा उसकी रक्षा हुई। पद्मपुराण में सुस्पष्ट है कि प्रभु के समक्ष भूमि पर गिरे हुये वायस को जब श्रीजानकीजी ने गिरा हुआ देखा तब उसके शिर को प्रभु के चरणों में जोड़ दिया। उसके प्राणों पर आपत्ति आई हुई जानकर अपने स्वामी से उसकी रक्षा के लिये बार–बार प्रार्थना करने लगीं। उसपर श्रीजानकीजी की कृपा देखकर कृपासुधासिन्धु, शरणागतवत्सल श्रीराम ने अपने हाथों से उसे उठाकर उसकी रक्षा की तथा बार-बार कृपादृष्टि से उसे देखने लगे। पूर्वोक्त संश्लेष दशा में [प्रभु के साथ रहने पर] जीवों पर श्रीजी की जो कृपा हुई उसके उदाहरण दिये गये। अब विश्लेष दशा में उनकी जिस कृपाकादम्बिनी की अपराधी जीवों पर वर्षा हुई उसका उदाहरण देते हैं– सुन्दरकाण्ड में जब दुष्ट रावण ने श्रीजानकीजी के समक्ष अनेक अनुचित वचन कहे तब उन्होंने उससे कहा–'यहाँ [लङ्का में] सन्त महात्मा नहीं रहते हैं? अथवा–यदि रहते हैं तो तुम उनका अनुसरण नहीं करते हो– उनसे उपदेश ग्रहण नहीं करते हो। अतएव तुम्हारी बुद्धि शास्त्र-विपरीत तथा आचाररहित है। इत्यादि श्लोकों से विपरीत बुद्धि

रावण को प्रभु के चरणों में लगाने के लिये अनेक उपाय किये। रावणवध के पश्चात् राक्षसियों का चित्रवध करने केलिये उद्यत श्रीहनुमान्‌जीके प्रति पापी हों अथवा शुभ [पुण्यात्मा] हों अथवा वध के योग्य ही क्यों न हो, बड़ों को तो उनपर कृपा ही करनी चाहिये। इस प्रकार श्रीहनुमान्‌जी के हृदय से क्रोध को दूर कर राक्षसियोंपर उनकी कृपा हो ऐसे वाक्यों को कहकर उनसे क्षमा कराया अतएव संयोग वियोग दोनों दशाओं में श्रीकिशोरीजी का पुरुषकारत्व श्रीरामायण में स्थल-स्थल पर वर्णित है।

श्रीलोकाचार्य स्वामी कहते हैं—संयोगावस्था में श्रीकिशोरीजी प्रभु को वश में करती हैं तथा वियोगावस्था में जीवों को वश में करती हैं।

'संश्लेषदशायां— ईश्वरं वशीकरोति।
विश्लेषदशायां— चेतनं वशीकरोति'॥

इन दोनों अवस्थाओं में श्रीकिशोरीजी के पुरुषकारत्व का स्वरूप क्या है? इस जिज्ञासा का समाधान करते हुये कहते हैं— संयोग दशा में प्रभु को वश में करने का स्वरूप यह है कि जब प्रभु जीवों के अपराधों को देखकर 'क्षिपामि न क्षमामि' उनको क्षमा न करके दण्ड देने के लिये उद्यत होते हैं तब भगवान् को दण्ड देने की स्थिति से रोक कर जीवों के अनुकूल कर देती हैं। जीवों को वश करने का स्वरूप यह है कि जो जीव शास्त्र विरुद्ध आचरण कर भगवान् से विमुख हो जाते हैं उनके ऐसे दूषित आचरणों को दूर कर प्रभु की शरण में ले जाने की योग्यता उत्पन्न करती हैं। भगवान् तथा जीव दोनों को श्रीकिशोरीजी

उपदेश के द्वारा वश में कर लेती हैं। प्रभु को वश करते समय उनसे कहती हैं कि यदि आप इस जीव के अपराधों की गिनती कर अपने दरबार से निकालकर किवाड़ लगा लेंगे तब इस जीव का आपके अतिरिक्त अन्य कौन आश्रय होगा ? अर्थात् आपके अतिरिक्त अन्य कोई शरणागतवत्सल, सर्वसमर्थ, मायापति स्वामी होता तो जीव उसी का आश्रय ग्रहण करता किन्तु ऐसा कोई भी सर्वसमर्थ पुरुष नहीं है ऐसी दशामें आपको छोड़कर अन्य किसका आश्रय ग्रहण करे। श्रीकिशोरीजी द्वितीय हेतु की ओर संकेत करती हुई प्रभु से कहती हैं— रक्षा की अपेक्षा से आये हुये जीव की रक्षा यदि आप नहीं करेंगे तब आपका 'सर्वरक्षक' यह एक नाम विफल हो जायेगा। अनुकूल प्रतिकूल सभी प्रकार के जीवों की रक्षा करने से ही सर्वरक्षक नाम सफल होगा। प्रभु तर्क देते हैं— अनादि काल से मेरी आज्ञा का उल्लंघन कर इस जीव ने शास्त्रविरुद्ध आचरण किया है। श्रुतिस्मृति प्रभु की आज्ञा है जो इसका उल्लंघन करता है उसको भगवान् आज्ञा का उल्लंघन करने वाला, अपना द्रोही मानते हैं भले ही वह वैष्णव भक्त ही क्यों न हो, 'श्रुतिस्मृती ममैवाज्ञे यस्त उल्लङ्घ्य वर्तते, आज्ञाच्छेदी मम द्रोही मद्भक्तोऽपि न वैष्णवः'। इस प्रकार मेरी आज्ञा का उल्लंघन कर इसने मेरा अपराध किया है। मुझे इसपर महान् क्रोध है। यदि मैं इसके अपराधों के अनुरूप इसे दण्ड नहीं देता हूँ तथा इसे क्षमा कर देता हूँ तो शास्त्र की मर्यादा नष्ट हो जायेगी। अतः यह दण्ड का पात्र है, क्षमा का पात्र नहीं है। श्रीकिशोरीजी प्रभु के इस अभिप्राय को जानकर पुनः उनसे प्रश्न

करती हैं—यदि इस जीव की रक्षा न कर आप इसके अपराधों के अनुरूप दण्ड ही देंगे तब आपके कृपादि गुण किस प्रकार जीवित रहेंगे ? कृपादिगुणों की उपयोगिता इस प्रकार के जीवों के रक्षण से ही सम्भव है ।

प्रभु अपनी विवशता प्रकट करते हुये श्रीकिशोरीजी से कहते हैं—अपराधी जीवों को दण्ड नहीं देता हूँ तो शास्त्र की उपयोगिता नहीं रहती, और यदि अपराधी जीवों की रक्षा नहीं करता हूँ तो कृपादिगुणों की उपयोगिता नष्ट हो जाती है मैं क्या करूँ ? आप ही बतलाइये । श्रीकिशोरीजी प्रभु से कहती हैं—यदि आप कहते हैं दण्ड के बिना शास्त्र व्यर्थ हो जायेगा, रक्षा के बिना कृपादिगुण व्यर्थ हो जायेंगे इस असमञ्जस में 'मैं क्या करूँ?' ऐसा आप न कहें । शास्त्र एवं कृपा दोनों का ठीक-ठीक प्रयोग हो ऐसी युक्ति मैं आपको बतलाती हूँ । जो जीव आपसे विमुख हों उनके लिये विधिनिषेधात्मक शास्त्रों का प्रयोग करें तथा जो जीव आपकी शरण में आयें उनके ऊपर कृपादिगुणों का उपयोग करें इस प्रकार दोनों का उपयोग होने से दोनों सुरक्षित रहेंगे । उपदेश से ईश्वर एवं जीव को श्रीकिशोरीजी वश में करती हैं इस प्रसङ्ग की व्याख्या की जा रही है ।

अवतार काल में जब जयन्त के प्राणों पर संकट आ गया तब प्रियतम प्रभु से उसकी रक्षा की प्रार्थना की । यद्यपि उसने अक्षम्य अपराध किया था जिसका वर्णन वाणी से संभव नहीं । प्रभु ब्रह्मास्त्र के द्वारा उसके मस्तक का छेदन करने के लिये प्रवृत्त हुये तब श्रीकिशोरीजी के उपदेश के कारण उसका वध

नहीं हो सका। उसकी केवल एक आँख फोड़कर भगवान् ने उसकी रक्षा की। इस प्रसङ्ग का विशद् विवेचन श्रीरामायण तथा पद्मपुराणादि ग्रन्थों में उपलब्ध है। प्रभु को श्रीकिशोरीजी किस प्रकार वश में करती हैं यह प्रसङ्ग पूर्ण हुआ अब जीव को किस प्रकार वश में करती हैं इसकी चर्चा की जा रही है--

अपराधी जीवों को श्रीकिशोरीजी उपदेश देती हैं–तुम्हारे असंख्य अपराधों को प्रभु ने जान लिया है अब तुम्हारी कहीं कोई दूसरी गति नहीं है। भगवान् सर्वतन्त्र स्वतन्त्र हैं उनपर किसी का अंकुश नहीं है तुम्हारे अपराधों को देखकर उसके अनुरूप दण्ड अवश्य देंगे। इस अनर्थ से बचना चाहते हो तो उनके चरणारविन्द की शरणागति के बिना दूसरा कोई मार्ग नहीं है। यदि कहो कि मुझ अपराधी को वे कैसे अङ्गीकार करेंगे अवश्य ही दण्ड देंगे, इस प्रकार भय मत करो। क्योंकि यदि उनकी ओर तुम केवल अपना मुख ही कर लोगे तो आभिमुख्य लेशमात्र से ही तुम्हारे अपराधों को क्षमा कर देंगे अथवा उन्हें भोग्य [भेंट] के रूप में स्वीकार कर लेंगे। क्योंकि इस प्रकार शरणागतवत्सल दीनवत्सल आदि अनन्त गुणों से वे पूर्ण हैं तथा लोक में प्रसिद्ध भी हैं। यदि तुम सुखपूर्वक रहना चाहते हो तो प्रभु का आश्रय ग्रहण करो। इस प्रकार जगज्जननी श्रीजानकीजी परम हितकर उपदेशों से चेतनों को वश में करती हैं। दुर्मार्ग में प्रवृत्त पापी रावणके प्रति श्रीकिशोरीजी का उपदेश श्रीरामायण में प्रसिद्ध है। श्रीकिशोरीजी रावण से कहती हैं–'यदि तुम्हें अपने नगर की रक्षा और दारुण बन्धनसे बचने की इच्छाहो तो पुरुषोत्तम

भगवान् श्रीराम को अपना मित्र बना लेना चाहिये, क्योंकि वे ही इसके योग्य हैं। भगवान् श्रीराम ही समस्त धर्मों के ज्ञाता और सुप्रसिद्ध शरणागतवत्सल हैं। यदि तुम जीवित रहना चाहते हो तो उनके साथ तुम्हारी मित्रता हो जानी चाहिये। इस प्रसङ्ग में जगज्जननी श्रीजानकीजी ने रावण को स्वयं उपदेश दिया है जब रावण श्रीजानकीजी में मातृत्व बुद्धि को छोड़कर कुछ असङ्गत प्रलाप करने लगा तव जगज्जननी श्रीजानकीजी दुःखी होकर विचारने लगीं कैसा इसका स्वभाव है? कैसे कोई इसको उपदेश दे सकेगा इस प्रकार विचारकर माता के सम्बन्धजनितवात्सल्य के कारण दयावती श्रीकिशोरीजीने स्वयं उसे उपदेश देना प्रारम्भ कर दिया। श्रीरामजी की शरण में जाओ यदि ऐसा कहतीं तो अभिमानी रावण इस वचन को सहन नहीं करता अतः मित्र कहा। साथ ही शरणागत को श्रीसीतारामजी अपने अधीन [मित्र] समझते हैं। श्रीराघवेन्द्र ने विभीषण के लिये कहा है मित्र भाव से आये हुये विभीषण का परित्याग मैं किसी प्रकार नहीं कर सकता यदि उसमें दोष होगा तो भी सज्जनों की दृष्टि में दोष-युक्त शरणागत का संग्रह प्रशंसनीय कहा गया है। श्रीकिशोरीजी भी श्रीरामजी से मित्रता का ही उपदेश देती हैं। मार्ग के चोर भी भूमि पर पाँव रखकर ही चोरी करते हैं अतः तुम्हें भी यदि स्थान [आश्रय] चाहिये तो उन्हीं का भजन करो। अन्यथा तुम्हारे समक्ष तुम्हारे परिवार के सदस्यों का वध कर पश्चात् तुम्हारा चित्रवध करेंगे यदि ऐसा नही चाहते हो तो उनकी शरणागति कर लो। मेरे अपराधों के कारण वे मुझे कैसे अङ्गीकार

करेंगे ऐसी चिन्ता तुम्हें नहीं करनी चाहिये क्योंकि वे पुरुषधौरेय हैं, लेशमात्र अनुकूलता देख लेंगे तो सभी अपराधों को भूल जायेंगे। रावण ने श्रीराघवेन्द्र की शरणागति स्वीकार नहीं की इसमें उसके पापसमूह ही हेतु हैं। जगज्जननी के उपदेश में कोई कमी नहीं है।

श्रीलोकाचार्य स्वामी कहते हैं- उपदेश से यदि जीव प्रभु की शरण में नहीं आता तव श्रीकिशोरीजी अपनी कृपा से वश में कर लेती हैं। उपदेश से दोनों की कर्मपरतन्त्रता नष्ट हो जाती है अनादि अविद्या के सम्बन्ध से जीवमें कर्मपरतन्त्रता है। निरंकुश, स्वतन्त्र, सत्यसंकल्प सम्बन्ध से प्रभु में कर्मपरतन्त्रता है। यद्यपि दोनों का इस प्रकार का स्वभाव अनादिसिद्ध है तथापि माता के सम्बन्ध से जीवमात्र की जननी जीवमात्र की मान्या तथा राजमहिषी [पटरानी] के सम्वन्ध से प्रभु की प्राणवल्लभा होने के कारण दोनों के हृदयों को कोमल बनाकर आश्रय तथा अङ्गीकार की योग्यता दोनों में उत्पन्न कर अन्त में श्रीकिशोरीजी दोनों को मिलाकर ही शान्त होती हैं। इनके उपदेश से भगवान् जीव को दण्ड देने से निवृत्त हो जाते हैं तथा जीव शास्त्रविरुद्ध आचरण से निवृत्त हो जाता है अतः उचित ही कहा गया है कि 'उपदेश के द्वारा दोनों को वश में कर लेती हैं' इसमें कोई विरोध नहीं है। उपदेश से जव दोनों अपने-अपने कार्य से निवृत्त नहीं होते हैं तव श्रीजी क्या करती हैं इस पर विचार करते हुये पुनः कहते हैं—चेतन के निवृत्त न होने का मूल—अनादिकाल से जिस किसी का आश्रय लेकर प्रभु से विमुख होने का व्रत ले

रखा है इस उक्ति के अनुसार भगवान् से विमुख होकर विषयान्तर में प्रवृत्त होकर दुर्वासनाओं के कारण ही संसार चक्र में भ्रमण कर रहा है। अपराध के अनुरूप इस जीव को शिक्षा देनी चाहिये इस विचार से प्रभु अपने निश्चय पर दृढ़ रहते हैं इस दृढ़ता में उनकी निरंकुश स्वतन्त्रता ही कारण है।

इस प्रकार इन दो हेतुओं से अपने-अपने कर्मों में परतन्त्र होने के कारण जब दोनों अपने-अपने कार्यों से निवृत्त नहीं होते हैं तब चेतनों को अपनी कृपा से वश में करती हैं। वे खेद का अनुभव करती हुई विचार करने लगती हैं कि इस जीव की दुर्बुद्धि निवृत्त हो जाती एवं इसकी बुद्धि अनुकूल हो जाती। इस संकल्प के साथ अपनी असाधारण कृपा के द्वारा जीव की पापमय बुद्धि को बदलकर भगवान् की शरणागति की योग्यता प्रदानकर देती हैं। जब भगवान् उपदेश से वश में नहीं होते तव अपने असाधारण सौन्दर्य के द्वारा प्रियतम प्रभु को वश में कर लेती हैं। भगवान् को वश में करने का प्रकार श्रीवचनभूषण के व्याख्यानमें देखना चाहिये। इस प्रकार श्रीजगज्जननी श्रीजानकी जो के पुरुषकार वैभव का वर्णन किया गया इनके रसनीय रहस्य का रसास्वादन पुनः 'मर्त्यावतार' इस श्लोक के व्याख्यान के अवसर पर हम करेंगे। 'सीताभिराम' इस विशेषण का यही तात्पर्य है।

रामम्– राम का अर्थ दशरथनन्दन श्रीराम है। जिस अनन्त सत्य, आनन्द, चित्स्वरूप में योगी लोग रमण करते हैं इस श्रीराम पद से परब्रह्म का अभिधान [निरूपण] होता है इस प्रकार श्रीरामतापनीय श्रुति अभिधा वृत्ति से श्रीराम को परब्रह्म

कहते हैं। ब्रह्म, सत्य, ज्ञान एवं आनन्द स्वरूप है इत्यादि वेदान्त प्रतिपादित सत्य, ज्ञान, आनन्द आदि श्रीराम में समन्वित होते हैं। जो स्वयं बड़ा हो तथा अन्य तत्त्वों को भी बड़ा बनाता है उसको ब्रह्म कहा जाता है इस अर्थ का भी यहाँ अनुसन्धान करना चाहिये। ब्रह्मके स्वरूप तथा गुण दोनों व्यापक हैं। व्यापक गुण के कारण ही ब्रह्म का सच्चिदानन्द अर्थ उपलब्ध होता है। श्रीराम यह शब्द साक्षात् परब्रह्म स्वरूप का वाचक है क्योंकि एक ही सच्चिदानन्द स्वरूप को परतत्त्व कहना उचित होगा। सत्, आत्मा, परब्रह्म, परमात्मा इत्यादि शब्दों का किसी एक वाच्य विशेष में तात्पर्य होना आवश्यक है क्योंकि सत् आदि सामान्य शब्द हैं। सामान्य शब्दों का विशेष में तात्पर्य होता है यह शास्त्रों का नियम हैं। सर्वशाखाप्रत्ययन्याय से कारणवाक्य में यदि अनेक शब्द हों तो उनका एक में पर्यवसान होना सर्वथा उचित है। उपनिषदों में मूल कारण बताने वाले ब्रह्म आदि शब्दों का उनके वाच्य सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीराम में ही तात्पर्य स्वीकार किया गया है इस प्रकार दशरथनन्दन श्रीराम की सर्वोत्कृष्टता का वर्णन किया गया है। तापनीय श्रुति के छठें मन्त्रमें भी श्रीराम को स्पष्ट रूपसे परब्रह्म कहा गया है—चिन्मय, अद्वितीय, निष्कल, प्राकृत शरीर रहित, परब्रह्म– उपासकों के लिये अनेक रूप में प्रकट होता है। इस श्रुति में जो सच्चिदानन्द स्वरूप श्रीराम परब्रह्म के रूप में पूर्व में प्रतिपादित हैं वही श्रीराम चिन्मय आदि विशेषणों से विशिष्ट श्रीदशरथनन्दन के रूप में प्रकट होते हैं।

'चिन्मय' इस विशेषण से श्रीराम के श्रीविग्रह को भी चिद्रूप कहा गया है। 'अर्धमात्रा' स्वरूप श्रीराम ब्रह्मानन्द के एकमात्र विग्रह हैं। श्रीरामचन्द्र चिदात्मक हैं। ओंकार स्वरूप भगवान् श्रीरामचन्द्र अद्वैत परमानन्द परब्रह्म स्वरूप हैं। भूर्भुवः स्वः आदि से उन्हीं का प्रतिपादन किया गया है, मैं उनको बार-बार नमस्कार करता हूँ इत्यादि तापनीय के आगेके मन्त्रों से श्रीराघवेन्द्र के स्वरूप तथा श्रीविग्रह दोनों को सच्चिदानन्दस्वरूप कहा गया है। अन्यथा स्वरूप तो जीवों के भी चिन्मय हैं–किन्तु शरीर प्राकृत हैं। अतः चिन्मय यह विशेषण भगवान् के स्वरूप एवं श्री विग्रह दोनों के लिये कहा गया है। अशरीरी इस पद से प्राकृत शरीर का निषेध किया गया है क्योंकि अर्धमात्रात्मक श्रीराम ब्रह्मानन्द के एकमात्र विग्रह हैं इत्यादि मन्त्रों से उनका दिव्य-मंगलमय विग्रह से युक्त होना सुस्पष्ट है। अद्वितीय इस विशेषण से जगत् की रचना में दूसरे निमित्त कारण का निषेध किया गया है। जिस प्रकार घट आदि के निर्माण में कुम्हार के दण्ड चक्र आदि सहायक होते हैं उसी प्रकार भगवान्का कोई अन्य सहायक नहीं है। जगत् के उपादान तथा निमित्तकारण दोनों भगवान् ही हैं। अथवा अपने समान तथा अधिक से प्रभु रहित हैं इस लिये भी श्रीराम को अद्वितीय कहा गया है। श्रुति कहती है–भगवान् के समान कोई नहीं है अधिक कहाँ से होगा। भागवत में श्री शुकदेव जी कहते हैं—

परीक्षित्! भगवान् के समान-प्रतापशाली और कोई नहीं है, फिर उनसे बढ़कर तो हो ही कैसे सकता है। उन्होंने देवताओं की प्रार्थना से ही यह लीलाविग्रह धारण किया था।

ऐसी स्थिति में रघुवंश शिरोमणि भगवान् श्रीराम के लिये यह कोई बड़े गौरव की बात नहीं है कि उन्होंने अस्त्रशस्त्रों से राक्षसों को मार डाला या समुद्रपर पुल बाँध दिया। भला, उन्हें शत्रुओं को मारने केलिये बंदरों की सहायता की भी आवश्यकता थी क्या ? यह सब उनकी लीला ही हैं।

श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती इस श्लोक की व्याख्या करते हुये कहते हैं—नर लीला की दृष्टि से यहाँ प्रभु के चमत्कारिक यशोमाधुर्य का आस्वादन किया गया है ऐश्वर्य की दृष्टि से नहीं। सेतुबन्ध, रावणवध, कपिसहायता आदि का वर्णन नरलीला माधुर्य की दृष्टि से ही किया गया है। निष्कल का अर्थ है मायासम्बन्ध-रहित, अथवा प्राकृत संसार के सभी अवयव उन्हीं से निकले हैं। 'निर्गताः कला अवयवा यस्मात् असौ निष्कलः' अथवा सभी कलायें—अवतारविग्रह उन्हीं से निकले हैं। यह भी निष्कल का अर्थ है। उपासकों के कार्यार्थ ब्रह्म में रूप की कल्पना है यहाँ रूप पद शरीर वाचक है, क्योंकि 'कल्पित शरीर' इस आगे के पद में रूप के स्थान पर शरीर शब्द का प्रयोग किया गया है। सनत्कुमारसंहितान्तर्गत श्रीरामस्तवराज में भी मत्स्य, कूर्म, वराह आदि इस श्लोक में रूप पद मत्स्य आदि अवतारशरीरबोधक है। अनेक उपासकों की अभीष्ट सिद्धि के लिये परब्रह्म श्रीराम अपने नित्य द्विभुजरूप में चतुर्भुज आदि विग्रह धारण करने में समर्थ हैं। 'कृपू सामर्थ्ये' इस धातु से निष्पन्न 'कल्पना' शब्द सामर्थ्य का बोधक है। 'ब्रह्मणो रूप कल्पना' इस मन्त्र में, उपासकों के कार्यके लिये ब्रह्मका रूप कल्पितहैं यह अर्थ नहींहै किन्तु कल्पना

का अर्थ वहाँ सामर्थ्य है अतः भगवान् उपासकों के लिये अनेक रूप धारण करने में समर्थ हैं यही वास्तविक अर्थ है। स्मृति भी कहती है—वैदूर्यमणि यद्यपि शुक्ल हैं किन्तु नील पीत आदि पुष्पों के समीप रखने पर उसमें नील पीत आदि रूपों का दर्शन होता है, उसी प्रकार उपासकों के ध्यान के भेद से भगवान् के रूप में भी भेद होते हैं।

श्रीभागवत में भी कहा गया है—हे नाथ ! आपकी प्राप्ति का मार्ग केवल आपके गुणों के श्रवण से ही जाना जाता है। आप निश्चय ही मनुष्यों के भक्तियोग के द्वारा परिशुद्ध हृदय-कमल में निवास करते हैं। पुण्यश्लोक प्रभो? आपके भक्तजन जिस-जिस भावना से आपका ध्यान करते हैं उन साधुपुरुषों पर अनुग्रह करने के लिये वही–वही रूप धारण कर लेते हैं। वाराह-पुराण में कहा गया है— भगवान् के सभी अवतार विग्रह नित्य-शाश्वत, ज्ञानस्वरूप, परमानन्दसमूह सभी गुणों से परिपूर्ण तथा सभी दोषों से रहित हैं। इस वचन से समग्र अवतार विग्रहों का प्राकृत सम्बन्धों से रहित होना सूचित होता है। निष्कल, निष्क्रिय शान्त, निरवद्य, निरञ्जन इत्यादि श्रुतिसमूह भगवान् के प्राकृत शरीरसम्बन्धगन्ध का ही निषेध करती है क्योंकि वे माया के विरोधी हैं। 'इति रामपदेनासौ परंब्रह्माभिधीयते' इस मन्त्र से परब्रह्म का दिव्यमंगलमयविग्रह द्विभुजही कहा गया है। 'द्विभुजः कुण्डली' आगे की श्रुति भी द्विभुज का ही वर्णन करती है। जब वेद में भगवान् के स्वरूप के लिये प्रश्न किया गया उनका मुख क्या है ? भुजायें, जंघा, पाँव आदि कैसे हैं ? तब उत्तर मिला—

भगवान् के मुख से ब्राह्मण, भुजाओं से क्षत्रिय, जङ्घा से वैश्य तथा पादारविन्द से शूद्र उत्पन्न हुये। इस कारणवादी श्रुति में भी 'बाहू' इस द्विवचन से भगवान् का परस्वरूप द्विभुज ही कहा गया है। इस प्रकार ब्रह्म शब्द से कथित बृहत् गुणों के आश्रय, रमण के एकमात्र आश्रय–श्रीराम ऐसा जिनका मधुर नाम है ऐसे भगवान् भक्तों को भुक्ति मुक्ति प्रदान करने के लिये अपने नित्य द्विभुज श्रीविग्रह में चतुर्भुज आदि विग्रहों को प्रकट करते हैं। उसी उपनिषद् में श्रीराम शब्द के अन्य अर्थ इस प्रकार किये गये हैं–

'रघुकुल में दशरथनन्दन के रूप में महाव्यापक आदि गुणों से युक्त भक्तों पर अनुग्रह करने के लिये श्रीरामनाम से प्रसिद्ध चिन्मय परब्रह्म अवतरित हुये। जो इस एकपादविभूति पृथ्वी पर विराजमान रहकर भक्तों के सभी मनोरथों को पूर्ण करते हैं, उन्हीं का विद्वानों ने इस लोक में श्रीराम नाम से प्रतिपादन किया।' इस मन्त्र में चिन्मय यह विशेष्य पद है। श्रीविष्णु श्रीहरि आदि पद विशेषण हैं। व्यापक होने के कारण श्रीविष्णु, भक्तों के क्लेशों को हरण करने के कारण श्रीहरि-श्रीराम को कहा गया है। अतः ये दोनों श्रीराम के विशेषण हैं। सभी मन्त्रों में चिन्मय पद का ही अभ्यास भी किया गया है। चिन्मय, ज्योतिर्मय, स्वप्रकाश, परतत्त्व का ही इस उपनिषद् में प्रतिपादन किया गया है अतः उसका वाचक चिन्मय पद विशेष्य है। श्री-हरि महाविष्णुपद विशेष्य नहीं, यदि विशेष्य होते तो इन दोनों का सर्वत्र अभ्यास द्वारा वर्णन किया जाता। एक वाक्य में यदि

अनेक पद हों तो वे सभी विशेष्य नहीं बन सकते, विशेष्य तो कोई एक पद ही होगा अतः चिन्मय पद विशेष्य है,श्रीहरि महा-विष्णु दोनों पद विशेषण होने के कारण सार्थक हैं । 'चिन्मय-स्याद्वितीयस्य' 'चिन्मयः परमेश्वरः' 'रामचन्द्रश्चिदात्मकः' इत्यादि मन्त्रों में चिन्मय पद का अभ्यास सुस्पष्ट है । 'चिन्मये-ऽस्मिन्' इस प्रथम श्रुति में उनके नाम [श्रीराम] के प्रकाशन बिना ही चिन्मय वस्तु श्रीदशरथजी के प्राङ्गण में प्रकट हुआ यह सूचित किया गया । इस श्रुति के अर्थ का विस्तार करने वाले महापुरुषगणों ने उनके विशेष नाम [श्रीराम] के निर्देश के बिना ही परतत्त्व परब्रह्म आदि कहकर उनका आविर्भाव सूचित किया है ।

चैत्र शुक्ल नवमी, सूर्य, मङ्गल, शनि, गुरू, शुक्र—ये पाँचो ग्रह उच्च स्थान में विद्यमान थे । चन्द्रमा के साथ बृहस्पति थे । कर्क लग्न पुनर्वसु नक्षत्र में परमपावन अयोध्यारूपी अरणि के मन्थन से जब स्वतः समस्त पलाश समिधायें प्रज्वलित हो उठीं तब उससे अभूतपूर्व एक तेज प्रकट हुआ ।

वेदवेद्य पुरुषोत्तम श्रीदशरथनन्दन के रूप में अवतीर्ण हुये । हाथ में धनुर्बाण धारण किये राक्षसों के विनाश करने वाले जगत् की रक्षा के लिये अपनी लीला से अजन्मा,विभु प्रभु प्रकट हुए । चैत्र मास, शुक्ल पक्ष, नवमी तिथि को श्रीरघुनन्दन प्रकट हुये जो केवल परब्रह्म ही थे इत्यादि वाक्यों से,एक तेजःस्वरूप, पर-पुरुष, अज, विभव आदि सामान्य शब्दों से श्रीराम का प्राकट्य कहा गया है अतः यहाँ भी अज,विभव आदि शब्द विशेषण हैं

श्रीराम विशेष्य हैं। पुनः तापनीय श्रुति कहती है 'स्वभूर्ज्योतिर्मयोऽनन्तरूपी स्वेनैव भासते' श्रीराम स्वतः सिद्ध कारणरहित हैं इससे श्रीराम तथा उनके मन्त्र—दोनों को कारणरहित होना कहा गया है। मूलकारण अनेक नहीं होते अतः श्रीराम का, सबका कारण होना सहज सिद्ध है। प्रभु ज्योतिर्मय—प्रकाशमय हैं। तथा अन्य सभी वस्तुओं के प्रकाशक हैं। बाल्मीकि रामायण में सुस्पष्ट है-'सूर्यस्यापि भवेत् सूर्यो ह्यग्नेरग्निः प्रभोः प्रभुः' श्रीराम समस्त लोक प्रकाशक सूर्य के भी सूर्य हैं अर्थात् प्रकाशक हैं। सभी वस्तुओं का परिपाक एवं दहन करने वाले अग्निदेव के भी अग्नि हैं अर्थात् अग्निदेव भी उनके संकल्पाधीन होकर कार्य करते हैं। ब्रह्म रूद्रादि देवताओं को सृष्टि आदि करने की शक्ति प्रदान करते हुये सभी का पालन करते हैं। 'तमेव भान्तमनुभाति सर्वम्' 'यदादित्यगतं तेजः' 'अहं वैश्वानरो भूत्वा' भगवान् के प्रकाश से सभी वस्तुयें प्रकाशित हैं, सूर्य, चन्द्र, अग्नि आदि में भी मेरा ही तेज है, मैं ही अग्नि रूप से प्राणियों के शरीर में प्रविष्ट हूँ, इत्यादि श्रुति, स्मृतियों से भगवान् की सर्वकारणता सुप्रसिद्ध है।

श्रीराम अनन्तरूपी हैं। उनका द्विभुजरूप अनन्त है क्योंकि भिन्न—भिन्न देशों में स्थित भावुक भक्तों के हृदयों में एक साथ ही प्रकट हो जाते हैं। अथवा अनन्त अपरिमित उनके रूप हैं। नील, पीत आदि पुष्पों की सन्निधि में जिस प्रकार वैदूर्यमणि में नील, पीत आदि रंगों का दर्शन होता है उसी प्रकार प्रभु में भी ऐसी विलक्षण शक्ति है कि भिन्न—भिन्न उपासकों के भावानुसार भिन्न—भिन्न रूपों में उनको दर्शन देते हैं। 'उपासकों के ऊपर

अनुग्रह के लिये परब्रह्म अनेक विग्रह धारण करता है' 'जो मत्स्य कूर्म आदि अवतार धारण करते रहते हैं' इत्यादि मन्त्रों से श्रीराम का सर्वरूपित्व सुस्पष्ट है। सनत्कुमार संहिता में भी उनके द्वारा मत्स्य कूर्म, वराह आदि विग्रह धारण करना कहा गया है। महासमुद्र में शयन करते समय आपने मुझे प्रकट किया तथा प्राणियों की रक्षा के लिये आपने विष्णुरूप धारण किया। आप ही श्रीनारायण तथा एकश्रृङ्गवराह भी हैं इत्यादि महर्षि वाल्मीकि के वचनों से श्रीराम का सर्वरूपित्व सुस्पष्ट है।

यदि कोई शंका करे कि अनेक रूप धारण करने वाले सौभरि ऋषि आदि के भी अन्य कारण सुने जाते हैं तथा ज्योतिस्वरूप सूर्य आदि का भी प्रकाशक होता है? इस शंका का समाधान 'स्वेनैव भासते' इस पद से कर रहे हैं-'सौभरिऋषि आदि जीव हैं अतः उनके अन्यकारण नितान्त आवश्यक हैं किन्तु परब्रह्म श्रीराम का अन्य कारण नहीं हो सकता इस प्रथम शंका का समाधान तो 'स्वभूः' इस पद से पूर्व ही किया जा चुका है। द्वितीय शंका का समाधान 'स्वेनैव भासते' इस पद से कर रहे हैं–जिसप्रकार वे कारणान्तर रहित हैं उसी प्रकार प्रकाशान्तर रहित भी हैं, क्योंकि सर्वप्रकाशक एक ही हो सकता है। इसी अभिप्राय से श्रीराम नाम को समस्त भगवन्नामों का कारण कहा गया है– 'श्रीनारायण आदि नामों का प्रकाशक श्रीराम नाम है। श्रीविष्णु का एक–एक नाम समस्त वेदों के तुल्य है, ऐसे हजार श्रीविष्णु नाम के समान श्रीराम नाम है।' 'जीवत्वेनेदमों यस्य' श्रीराम प्रणव [ओंकार] के भी प्रकाशक हैं। ओंकार समस्त वेद एवं

समस्त मन्त्रों के कारण हैं किन्तु वह्नि बीज 'श्रीराम्' प्रणव के भी प्राण हैं। अग्निबीज ही वर्णविपर्यय से ओंकार रूप धारण करता है। वास्तव में श्रीराम मन्त्र से पृथक् ओंकार नहीं है अतएव सभी मन्त्रों के आदि में ओंकार लगाया जाता है किन्तु श्रीराम मन्त्र के पूर्व ओंकार नहीं लगता है। श्रीराममन्त्र षडक्षर-छः अक्षर का सुप्रसिद्ध है, यदि मन्त्र के पूर्व ओंकार लगाया जायगा तब सात अक्षर का श्रीराम मन्त्र हो जायगा। अष्टाक्षर श्रीनारायणमन्त्र तथा द्वादशाक्षरमन्त्र भी प्रणव के साथ ही आठ अक्षर तथा बारह अक्षरों से युक्त कहलाते हैं। अतएव यह कथन भी उपयुक्त नहीं है कि ओंकार की गणना को छोड़कर श्रीराममन्त्र को षडक्षर मान लिया जाय, जब अन्य मन्त्रों की गणना ओंकार के साथ ही होती है तब श्रीराम मन्त्र की गणना भी ओंकार के साथ की जानी चाहिये,ऐसी दशा में श्रीराम मन्त्र षडक्षर न होकर सात अक्षर वाला हो जायेगा। शास्त्रों में श्रीराम मन्त्र को षडक्षर ही कहा गया है। उत्तरतापनी में भी 'ओंमिति' मन्त्र के द्वारा श्रीराम मन्त्र का प्रणव के साथ अभेद कहा गया है। महारामायण में कहा गया है– रामनाम्नः समुत्पन्नः प्रणवो मोक्षदायकः' श्रीराम नाम से उत्पन्न प्रणव मोक्षप्रदायक है। सृष्टि स्थिति लयस्य च, इस पद से तीनों गुणों के द्वारा प्रभु श्रीराम सृष्टि आदि कार्य करते हैं। 'सृष्टि, स्थिति, संहार के कारण श्रीराम हैं। जिस प्रकार प्राकृत विशाल वृक्ष बीज के भीतर रहता है उसी प्रकार चराचर जगत् श्रीराम् बीज के अभ्यन्तर स्थित है। श्रीराम से अभिन्न राम् भी जगत् का उपादान-जगदा-

धार है। जिस प्रकार कोई खेत में बोता है, सींचता है, काटता है उसको लोग क्षेत्र का स्वामी कहते हैं। उसी प्रकार जगत् की सृष्टि आदि की रचना से श्रीराम जगत् शेषी हैं ऐसा वेदज्ञ [शास्त्रज्ञ] लोग निश्चय करते हैं। चराचर जगत् के साथ भगवान् श्रीराम का शेषशेषिभाव सम्बन्ध है। अतः समस्त चराचर जगत् श्रीराम का है, न अपना है, न दूसरे का है। जिस प्रकार वृक्ष के आश्रित वानर रहते हैं उसी प्रकार अपनी-अपनी शक्तियों के सहित ब्रह्मा, विष्णु, शिव रेफ के आश्रित हैं। 'सीतारामौ तन्मयावत्र पूज्यौ' इस मन्त्र से रेफमय श्रीसीताजी के साथ श्रीराम को जगत् का कारण कहा गया है।

'ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः' इत्यादि सैंतालीस मन्त्रों से उपनिषद् के अन्त में श्रीराम को सर्वावतारी तथा सब का कारण कहा गया है। इस प्रकार उपक्रम, उपसंहार आदि छह प्रकार के तात्पर्यनिर्णय करनेवाले वाक्योंमे श्रीरामके सर्वकारण सर्वावतारी आदि असाधारण परत्व का श्रीरामतापनीश्रुति में प्रतिपादन है।

भ्रम, प्रमाद, विप्रलिप्सा [लोभ], करणापाटव [इन्द्रियों की दुर्बलता] आदि मानवोचित दोषों से सर्वथा रहित वेद भगवत्तत्व के विवेचनमें परमप्रमाण हैं यह सर्वविदित है। आपस्तम्ब मन्त्र, ब्राह्मण दोनों को वेद मानते हैं। 'मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्' इस प्रकार श्रीरामतापनीयोपनिषद् भगवान् का सहज श्वासरूप स्वतः प्रमाण वेद ही है। इसी तापनीय श्रुति का उपबृंहण श्रीमद्वाल्मीकि रामायण है। भूषणकार 'आदिकाव्यमिदं त्वार्षं पुरा वाल्मीकिना कृतम्, यः पठेत् शृणुयात् लोके नरः

पापाद् विमुच्यते' इस श्लोक की व्याख्या करते हुये कहते हैं—यह आदिकाव्य आर्ष है। 'आर्षं ऋषिः वेदः तत्सम्बन्धि आर्षम्' यहाँ ऋषि का अर्थ वेद है। वेद से सम्बन्ध रखने वाला—वेदोप-बृंहण स्वरूप आदिकाव्य है। 'पुरा' का अर्थ है-पुरातन। श्रीराम-तापनी उपनिषद् इस रामायण का मूल है। तापनीय की ही व्याख्या श्रीरामायण है। यद्यपि समस्त मन्त्र ब्राह्मणात्मक वेदों की व्याख्या श्रीमद्रामायण है किन्तु तापनीय श्रुति भी ब्राह्मण भाग में है अतः साक्षात् वेद ही है। भूषणकार लिखते हैं—'रामो-त्तरतापनीय मूलत्वेन पुरातनमिति'। अब वेदोपबृंहणभूत श्री-मद्रामायण के द्वारा श्रीरामतत्त्व का रसास्वादन किया जाता है।

वेदावतार श्रीमद्रामायण से भी श्रीराम ही वेदान्त से एक-मात्र वेद्य, परात्पर पूर्णतम पुरुषोत्तम हैं-ऐसा महर्षि ने प्रतिपादन किया है। 'वेद के पूर्व भाग की व्याख्या प्रायः धर्मशास्त्रों से की गई है तथा इतिहास पुराणों के द्वारा वेद के उत्तरभाग—वेदान्त की व्याख्या की गई है'। वेदवेद्य पुरुषोत्तम जब श्रीदशरथनन्दन के रूप में अवतीर्ण हुये तब साक्षात् वेद भी महर्षि के द्वारा श्री-रामायण के रूप में अवतीर्ण हुये। इन वचनों से भी श्रीरामायण का वेदान्तार्थप्रकाशक तथा वेदावतार सिद्ध है।

मीमांसा दर्शन के अनुसार उपक्रम, उपसंहार, अभ्यास, अपूर्वता, फल अर्थवाद तथा उपपत्ति— इन छह प्रकार के वाक्यों से तात्पर्य का निर्णय किया जाता है। उपक्रम उपसंहार को एक वाक्य माना जाता है। इन षड्विध तात्पर्यनिर्णायक वाक्यों के द्वारा श्रीरामायण का महातात्पर्य जगत् के कारण परब्रह्म

श्रीराम में ही है यह पण्डितप्रवरों को भलीभाँति विदित है। उपक्रम [प्रारम्भ] में 'तपः स्वाध्यायनिरतम्' इस श्लोक से श्रीराम तत्त्व की जिज्ञासा की गई है जिस प्रकार 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' ब्रह्मसूत्र के इस प्रथम सूत्र से ब्रह्म की जिज्ञासा की गई है उसी प्रकार श्रीमद्रामायणमें प्रथम श्लोक से श्रीरामतत्त्व की जिज्ञासा की गई है। 'आचार्यवान् पुरुष भगवान् को जान सकता है', 'आचार्यों की शरणमें जानेपर ही तत्त्वज्ञान प्राप्त करना चाहिए' इत्यादि श्रुतियों, तथा गीता, भागवत आदि स्मृतियों में सुस्पष्ट है कि प्रपन्न होकर जिज्ञासुभाव से प्रश्न कर उनकी सेवा के द्वारा तत्त्वज्ञानियों से ज्ञान का उपदेश प्राप्त करना चाहिये। शब्दशास्त्रनिष्णात अर्थात् श्रोत्रिय तथा परब्रह्म में निष्णात ब्रह्मनिष्ठ शान्तचित्त गुरूदेव की शरण में जाकर भगवत्तत्व की जिज्ञासा करनी चाहिये। इत्यादि श्रुतिस्मृति वचनों के द्वारा गुरूशरणागति के पश्चात् ही तत्त्वसाक्षात्कार होता है। यह सर्वमान्य सिद्धान्त है। श्रीमद्रामायण में भी शम, दम आदि साधन सम्पन्न जिज्ञासुश्रेष्ठ महर्षि श्रीवाल्मीकि, श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ आदि समस्त आचार्य लक्षणों से सम्पन्न देवर्षि श्रीनारदजी की शरण में जाकर श्रीरामतत्त्व की जिज्ञासा इस प्रकार करते हैं— तप, स्वाध्याय में निरत, वाग्वेत्ताओं में वरिष्ठ, मुनिश्रेष्ठ श्री-नारदजी से तपस्वी श्रीवाल्मीकि ने प्रश्न किया। यहाँ 'प्रच्छ' धातु द्विकर्मक है अतः श्रीनारदजी के अतिरिक्त कर्म ब्रह्म भी है। महर्षि वाल्मीकि ने श्रीनारदजी से परब्रह्म के सम्बन्ध में प्रश्न किया। 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा की भाँति ही यहाँ भी श्रीराम ब्रह्म

जिज्ञासामूलक यह गुरू शिष्य समागम है। इस समय इस लोक में 'गुणवान् तथा वीर्यवान्' कौन है? इत्यादि श्लोकों के द्वारा वेदान्त में कहे गये समस्त कल्याणगुणों से सम्पन्न श्रीराम हैं अथवा ब्रह्मा आदि देवताओं में कोई अन्य हैं, इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि के प्रश्न करने पर देवर्षि श्रीनारद ने कहा– 'इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रामो नाम जनैः श्रुतः' इक्ष्वाकुवंश में अवतीर्ण जिनका श्रीराम ऐसा मधुर, मनोहर, मङ्गलमय नाम है तथा पामर से लेकर पण्डित पर्यन्त लोग जिनको जानते है इत्यादि श्लोकों के द्वारा श्रीनारदजी ने उत्तर दिया– वेदान्त प्रतिपादित ज्ञान,शक्ति बल, ऐश्वर्य, सौन्दर्य, माधुर्य, लावण्य, सौरस्य, सौगन्ध्य आदि अनन्त दिव्य कल्याणगुणगणों से युक्त श्रीराम ही हैं। इस प्रकार श्रीमद्रामायण के उपक्रम–आरम्भ में वेदान्तवेद्य श्रीराम ही हैं ऐसा महर्षि ने प्रतिपादन किया है। उपसंहार [श्रीरामायण के अन्त] में सर्वलोक पितामह ब्रह्मा ने श्रीराम से कहा–हे प्रभो! सृष्टि से पूर्व अपनी विचित्र शक्ति से चर, अचर जीवों सहित समस्त लोकों को अपने में लीन कर आपने महासमुद्र के जल में शयन किया था पुनः इस सृष्टि के आरम्भ में आपने सर्वप्रथम मुझे उत्पन्न किया। 'स्वयमेव' इस पद से प्रभु की स्वाभाविक शक्ति का संकेत किया गया है ब्रह्माजी कहते हैं–श्रीराम! महासमुद्र के जल में शयन करने वाले आप ही हैं, मेरी सृष्टि भी आपने ही की है। इससे श्रीराम के जगत्कर्तृत्व, संहर्तृत्वादिगुणों का प्रतिपादन किया गया है। ब्रह्माजी आगे कहते हैं– प्रभो! पश्चात् विशाल फन तथा शरीर से युक्त जल में शयन करने वाले

अनन्त नामक नाग को अपनी विचित्र शक्ति के द्वारा प्रकट कर आपने मधु, कैटभ दो महाबली जीवों को जन्म दिया। इन्हीं के अस्थिसमूहों से परिपूर्ण यह पर्वत सहित पृथ्वी तत्काल प्रकट हुई जो मेदिनी कहलाई। जैसे जल में मकर आदि होते हैं उसी प्रकार 'मेदः प्रधान मधु' तथा कमठ शुक्ति आदि के समान कैटभ हुआ। कठोर अस्थिसमूहों से शिला, पर्वत तथा मेदोमय मृदुप्रदेश से वृक्ष लता की उत्पत्ति हुई। 'संक्षिप्य हि पुरा लोकान्' इस वचन से जिन्होंने पहले ब्रह्मा को बनाया तथा वेद प्रदान किये, इत्यादि श्रुतियों का अर्थ प्रतिपादित है। आगे ब्रह्माजी कहते हैं–तत्पश्चात् आपकी नाभि से सूर्यतुल्य तेजस्वी दिव्य कमल प्रकट हुआ जिसमें आपने मुझको भी उत्पन्न किया तथा प्रजा की सृष्टि की रचना का समस्त कार्यभार भी मुझ पर रख दिया– मुझे प्रजापतिपद प्रदान किया। जब मुझपर यह भार रख दिया गया तब मैंने आप जगदीश्वर की उपासना कर प्रार्थना की। प्रभो! आप मेरे द्वारा रचित भूतों में रहकर उनकी रक्षा कीजिये, क्योंकि आप ही मुझे तेज सामर्थ्य प्रदान करने वाले हैं, यद्यपि भगवान् की आज्ञासे ब्रह्माजी सृष्टि का कार्य कर सकते हैं तथा शिवजी संहार का कार्य कर सकते हैं किन्तु भगवान् के बिना चराचर जगत् की रक्षा का भार कोई वहन नहीं कर सकता अतः रक्षा के लिये ब्रह्मा ने भगवान् से ही प्रार्थना की।

'ततस्त्वमपि दुर्धर्षात् तस्माद् भावात् सनातनात्।
रक्षार्थं सर्वभूतानां विष्णुत्वमुपजग्मिवान्' ॥

तब आप मेरी प्रार्थना स्वीकार कर प्राणियों की रक्षा के लिये अपरिमेय, सनातन, वाङ्मनसातीत, परवासुदेव रूप से

जगत्पालक विष्णु के रूपमें प्रकट हुये। श्रीरामतत्त्व का सम्यक् विवेचन एवं उनके वास्तविक स्वरूप का प्रतिपादन महर्षि ने इसी श्लोक से किया है। जब कभी किसी ग्रन्थ के उपक्रम में कोई सन्देह हो तो उपसंहार वाक्यों से सहायता लेकर ग्रन्थ के वास्तविक तात्पर्य का निर्णय कर लेना चाहिये। यद्यपि श्रीमद्रामायण के उपक्रम में किसी को कोई सन्देह नहीं होना चाहिये क्योंकि 'कोन्वस्मिन् साम्प्रतं लोके गुणवान् कश्च वीर्यवान्' इस लोक में इस समय गुणवान् तथा वीर्यवान् कौन है ? इस प्रश्न के उत्तर में 'इक्ष्वाकु वंशावतंस श्रीराम ही अनन्त कल्याणगुणगण-निलय हैं' ऐसा कहा गया। यदि श्रीराम से पृथक् श्रीरामायण का कोई अन्य प्रतिपाद्य तत्त्व होता तो 'रामो नाम जनैः श्रुतः' के स्थान पर उसी का निर्देश होता।

'समुद्र इव गाम्भीर्ये धैर्येण हिमवानिव ।
विष्णुना सदृशो वीर्ये सोमवत्प्रियदर्शनः ।।
कालाग्नि सदृशः क्रोधे क्षमया पृथिवीसमः ।
धनदेन समस्त्यागे सत्ये धर्म इवापरः ।।'

इत्यादि श्लोकों से श्रीराघवेन्द्र को स्वसमाभ्यधिकशून्य [अपने समान तथा अपने से अधिक से रहित हैं] कहा गया है। साथ ही लोक में जितनी भी उत्कृष्ट वस्तुयें हैं उनमें से प्रत्येक के एक-एक गुण से उनकी समता करने का प्रयास किया गया है। 'समुद्र की भाँति गम्भीर, हिमालय की भाँति धीर, श्रीविष्णु भगवान् की भाँति वीर, चन्द्रमा की भाँति प्रिय आदि कहकर यह सूचित किया गया कि जब कोटि-कोटि समुद्र का गाम्भीर्य

कोटि-कोटि हिमालय का धैर्य, कोटि-कोटि विष्णु का वीर्य, कोटि-कोटि चन्द्रमा का आह्लाद भी उनके गुणों की समता नहीं कर सकते फिर एक समुद्र के गाम्भीर्य, एक हिमवान् के धैर्य,एक श्रीविष्णु भगवान् के वीर्य की समता उनके गुणों से कैसे हो सकती है ?

गोविन्दराज भी कहते हैं– 'अथ अस्य निःसमाभ्यधिकत्वं वक्तुं लोके प्रकृष्ट वस्तूनां तदेकैकगुणसाम्यमाह-समुद्र इव इत्यादि श्लोकद्वयेन ।' उनका विचार है कि वास्तव में समुद्र आदि के साथ श्रीराघवेन्द्र की तुलना नहीं की जा सकती परन्तु फिर भी लोगों को समझाने के लिये समुद्र आदि की उपमायें दी गयी हैं जैसे– 'बाण की तरह सूर्य चलते हैं' यहाँ सूर्य की गति को बाण की गति से उपमा दी गई है किन्तु बाण की अपेक्षा उनकी गति कोटि-कोटि गुणित अधिक है। 'अत्र वस्तुतः समुद्रादेरूपमानत्वा-भावेऽपि प्रतिपत्तृणां उपमानत्वं सम्भवतीत्येवमुक्तम् यथा इषुवद् गच्छति सविता ।' गोस्वामीजीने इन श्लोकों की व्याख्या मानसके उत्तरकाण्ड में इस प्रकार की है—

हिमगिरि कोटि अचल रघुबीरा । सिंधु कोटि सत सम गंभीरा ॥
कामधेनु सतकोटि समाना । सकल काम दायक भगवाना ॥
सारद कोटि अमित चतुराई । बिधि सतकोटि सृष्टि निपुनाई।
विष्णु कोटि सम पालन कर्ता । रुद्र कोटि सत सम संहर्ता ॥
धनद कोटि सत सम धनवाना । माया कोटि प्रपञ्च निधाना ॥
भार धरन सत कोटि अहीसा । निरवधि निरूपम प्रभु जगदीसा॥

निरूपक न उपमा आन राम समानु राम निगम कहै।
जिमि कोटि सत खद्योत सम रबि कहत अति लघुता लहै॥'

इस प्रकार श्रीमद्रामायण के उपक्रम में ही श्रीराम को सर्वकारण, वेदान्तवेद्य कहा गया है किन्तु 'ततस्त्वमपि दुर्धर्षात्' इस वाक्य से सर्वकारणत्व एवं सर्वावतारित्व स्वरूप का सम्यक् विवेचन किया गया है। भूषणकार कहते हैं- 'दुर्धर्षात्' इस पद से श्रीराम के सर्वकारणभूत परवासुदेव स्वरूप का निरूपण किया गया है। जब ब्रह्मा ने प्रभु की उपासना की तब दुर्धर्ष, दुर्ज्ञेय, नित्य सनातन, परवासुदेव स्वभाव से सभी प्राणियों की रक्षा के लिये नित्य साकेतबिहारी श्रीराम ने विष्णु रूप धारण किया। अथवा नित्य सनातन परवासुदेव रूप विग्रह से अदिति माता के द्वारा भगवान् विष्णु के रूप में प्रकट हुये। वास्तव में आप परवासुदेव हैं किन्तु ब्रह्मा, रुद्र के मध्य में आदिविष्णु के रूप में आपने अवतार ग्रहण किया। पुराणकल्प से रामायण का कल्प भिन्न प्रतीत होता है। पुराणों में सर्वत्र भगवान् विष्णु से ही सभी अवतार प्रकट होते हैं। श्रीरामायण कल्प में साक्षात् परवासुदेव ही श्रीराम रूप में प्रकट हुए तथा श्रीराम ने ही विष्णु रूप धारण किया। 'विष्णुत्वमुपजग्मिवान्' विष्णु रूप धारण किया--वाल्मीकि का यह वचन यहां अनुशीलन करने योग्य है। पुराण कल्प में परधाम जाते समय श्रीराम विष्णुरूप धारण करतें हैं तथा श्रीभरत आदि भ्रातृगण शंख, चक्र आदि बन जाते हैं। श्रीरामायण कल्प में तो भ्राताओं के सहित सशरीर श्रीराम परधाम पधारे- 'विवेश वैष्णवं तेजः सशरीरः सहानुजः'

सानुज सशरीर श्रीराम का परमधामगमन श्रीरामायण की सबसे बड़ी विशेषता है। परवासुदेव ही श्रीरामरूप में अवतीर्ण हुये हैं ऐसा पूर्वाचार्यों ने भी स्वीकार किया है।

'एष नारायणः साक्षात् क्षीरार्णवनिकेतनः ।
नागपर्यङ्कमुत्सृज्य ह्यागतो मथुरापुरीम् ॥'

'यह क्षीर समुद्र निवासी श्रीनारायण ही नागशैय्या का परित्यागकर मथुरापुरीमें पधारे' इस वचन के अनुसार श्रीनारायण ही श्रीकृष्णरूप में मथुरा में अवतीर्ण हुये। समस्त पुराण भी श्रीकृष्ण को श्रीनारायण का ही अवतार मानते हैं। दाक्षिणात्य वैष्णवाचार्य कहते हैं—श्रीकृष्ण का अवतार श्रीनारायण से हुआ किन्तु साक्षात् परवासुदेव ही श्रीराम हैं।

ब्रह्माजी आगे कहते हैं—आपने ही वामनावतार भी ग्रहण किया, इन्द्रादि भ्राताओं की शक्ति बढ़ाने के लिये तथा लोकरक्षण कार्य में उनकी सहायता के लिये आप परवासुदेवस्वरूप से उपेन्द्र बने। हे जगताम्बर! अब प्रजा के भयभीत होनेपर रावण के वध के लिये आपने श्रीदशरथनन्दन श्रीराम के रूप में इस समय अवतार धारण किया है। इस प्रकार उपसंहार वाक्यों से सर्वजगत्कारणत्व प्रजापतिजनकत्व, सर्वावतारित्व आदि का प्रतिपादन करने से श्रीराम का सर्वोत्कृष्ट परत्त्व कहा गया। 'ततस्त्वमपि दुर्धर्षात्' इस श्लोक में कोई अलौकिक दुर्धर्ष सनातन भाव कहा गया है जिससे ब्रह्मा की प्रार्थना पर भगवान् श्रीराम ने सभी प्राणियों की रक्षा केलिये विष्णुरूप धारण किया। ब्रह्मा, विष्णु, महेश—इन त्रिदेवों के कारण परवासुदेव श्रीराम

ही हैं उन्होंने ही विष्णुरूप धारण किया भूषणकार का यही मत है। यहाँ पर श्रीराम को परवासुदेव कहा गया है इससे श्रीनारायण आदि के भी वे कारण हैं यह सुस्पष्ट प्रतिपादित है। जब श्रीरामने ही विष्णुरूप धारण किया तब श्रीराम तथा श्रीविष्णु में कोई भेद नहीं है, अतएव श्रीरामायण में स्थल-स्थल पर श्रीराम को विष्णु कहा गया है। मीमांसा में कहा गया है-जहाँ सन्देह हो वहाँ वाक्यशेष से-उपसंहार वाक्य से वस्तु का निर्णय किया जाता है। अतएव सभी लोग उपसंहार वाक्य को बलिष्ठ मानते हैं। उपक्रम उपसंहार की एकवाक्यता सभी ने स्वीकार की है। उपसंहार वाक्य में श्रीराम का सर्वजगत्कारणत्व, प्रजापतिजनकत्व, परवासुदेवस्वरूप आदि का स्पष्ट प्रतिपादन किया गया है इससे वेदावतार श्रीमद्वाल्मीकि रामायण के प्रतिपाद्य देवता श्रीसीताराम ही हैं यह उपक्रम, उपसंहार-दोनों वाक्यों से निश्चय किया गया।

समग्र श्रीरामायण में अभ्यास भी श्रीराम का ही देखा जाता है। उपक्रम,उपसंहार,अभ्यास आदि छः वाक्यों में 'अभ्यास' एक महत्त्वपूर्ण निर्णायक लिङ्ग है। ग्रन्थ में सर्वत्र जिस विषय का बार-बार मुख्यरूप से प्रतिपादन किया जाता है वही ग्रन्थ का प्रतिपाद्य विषय माना जाता है। इसी प्रक्रिया को अभ्यास कहा जाता है। अब अभ्यास के द्वारा श्रीरामतत्त्व का रसास्वादन किया जाता है। बालकाण्ड में देवताओं की प्रार्थना सुनकर भगवान् श्रीराम विष्णु रूप से प्रकट हुये उनके हाथ में शङ्ख, चक्र, गदा आदि आयुध सुशोभित थे, जगत्पति पीताम्बर धारण किये हुये थे।

इस श्लोक से भगवान् को जगत् कारण कहा गया है। परमकारूणिक भगवान् साधुओं के परित्राण, राक्षसों के विनाश तथा धर्म के संस्थापन के लिये अवतीर्ण होते हैं इस वचन के अनुसार श्रीदशरथजी के मनोरथ पूर्ण करने के लिये अवतार लेने की इच्छा से देवताओं के मध्य पधारे।

'एतस्मिन्नन्तरे'—भक्तों की रक्षा की अपेक्षा का समुचित काल जानकर प्रभु पधारे, चिरकाल से इस अवसर की प्रतीक्षा प्रभु कर रहे थे यहां ऐसा संकेत है। शास्त्र कहता है—सर्वज्ञ परमकारूणिक होते हुये भी भगवान् संसार को चलाने के लिये रक्षापेक्षा की प्रतीक्षा करते है अर्थात् रक्षा के लिये भक्त उनसे प्रार्थना करता है तभी वे अवतीर्ण होते हैं।

'विष्णुः'—सर्वान्तिर्यामी होने के कारण चराचर में वे विराजमान हैं। 'महाद्युतिः'—रक्षा का अवसर प्रभु को प्राप्त हुआ अतएव हर्षातिरेक के कारण उनके मुखमण्डल पर विशेष कान्ति है। इससे पूर्व संसारी जीवों की दुर्दशा को देखकर उनका मन खिन्न था। श्रुति भी कहती है—भगवान् अकेले रमण नहीं करते, अर्थात् भक्तों के साथ ही उनका रमण होता है। 'शंखचक्रगदापाणिः'—जब आश्रितों की रक्षा की आवश्यकता हो तब उनकी रक्षा के लिए अस्त्र ग्रहण में विलम्ब न हो एतदर्थ सर्वदा उन अस्त्रों से सुसज्जित रहते हैं। तनिश्लोकीकार कहते हैं कि श्रीरामायण में कहा गया है रावण के भय से सूर्य लंकामें अधिक ताप नहीं देते थे। वायु देवता उसके समीप अधिक वेग से नहीं वहते थे, उसको देखकर निरन्तर उत्ताल तरंगों से कोलाहल कुशल समुद्र भी शान्त हो जाते थे।

नैनं सूर्यः प्रतपति पार्श्वे वाति न मारुतः ।
चलोर्मिमाली सततं समुद्रोऽपि न कम्पते ॥

इत्यादि प्रमाणों के अनुसार सभी देवतागण अपने-अपने व्यापारों, क्रियाकलापों के सञ्चालन में भी उस समय स्वतन्त्र नहीं रह गये थे।

अपने-अपने पदों से वंचित होने की शङ्का से उस देवसभा में निःशङ्क भाव से रावणवध के उपाय पर विचार कर रहे थे। कदाचित् रावण वहाँ आ जाता तो सभी देवताओं के मस्तक छिन्न-भिन्न कर डालता ऐसी दशा में समस्त लोकों के रक्षक प्रभु की शरणागतवत्सलता पर कोई आँच न आने पावे एतदर्थ पहले से ही आयुधों एवं समस्त युद्ध सामग्रियों सहित वहाँ प्रकट हुये। शङ्खचक्रगदापाणि इस विशेषण का यहाँ यही तात्पर्य है।

'पीतवासा'-आश्रितों की रक्षा की शीघ्रता के लिये भगवान् सदा वद्धकक्ष [कमर में फेंट कसे] रहते हैं। 'जगत्पति'-- पूर्वोक्त वर्णित समस्त विशेषणों से विभूषित प्रभु जीवमात्र के स्वामीभाव सम्बन्ध को प्रकट कर रहे हैं। 'उपयातः'- बैकुण्ठ-श्रीसाकेतधाम से, प्रेमावतार श्रीदशरथजी महाराज की यज्ञशाला में प्रभु पधारे। भूषणकार ने 'एतस्मिन्नन्तरे' इस श्लोक की पूर्वोक्त व्याख्या की है। अभ्यास के द्वारा श्रीरामायण प्रतिपाद्य देवता श्रीराम के स्वरूपरूपगुणलीलाविभूति का रसास्वादन कर रहे हैं। तत्पश्चात् उसी देवसभा में देवताओं ने प्रभुसे कहा-हे देव ! सभी देवताओं के आप ही प्राप्य-परम गति हैं। यहाँ

सर्वशरण्यत्वरूप भगवान् के असाधारण परत्व का प्रतिपादन किया गया है। तत्पश्चात् उसी सभा में देवर्षि, गन्धर्व, अप्सरायें तथा रूद्रादि देवताओं ने दिव्य स्तुतियों से भगवान् मधुसूदन की स्तुति की। इस श्लोक से भगवान् के सर्वोपास्य स्वरूप का विवेचन किया गया है। बालकाण्ड में ही वेदविद् महर्षि विश्वामित्र ने श्रीदशरथजी से कहा है– सत्य पराक्रम, महामहिमासम्पन्न श्री-राम को मैं जानता हूँ। श्रीवसिष्ठजी तथा अन्य तपोनिष्ठ महर्षि-गण इनको भलीभाँति जानते हैं। इससे 'वेदाहमेतं पुरुषं महान्तं' वेदवेत्ता महर्षिगण भगवान् को जानते हैं। पुरुषसूक्त के इस मंत्र के अनुसार तथा 'तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति' वेदों के स्वाध्याय, यज्ञ, दान, तप, उपवास से वेदविद् विद्वान् प्रभु को जानने का प्रयास करते हैं इत्यादि श्रुतियों के अनुसार तप, ज्ञान ध्यान, उपासना के बिना भगवान् का ज्ञान असम्भव है इस विषय का प्रतिपादन किया गया है। श्रीमिथिलेशराजकिशोरी के विवाह के अवसर पर इक्ष्वाकुवंश का वर्णन करते हुये शाखोच्चार के अवसर पर श्रीवसिष्ठजी ने कहा है–प्रत्यक्ष, अनुमानादि प्रमाणों के अविषय एकमात्र वेदों से ही जानने योग्य, नित्य, शाश्वत, अव्यय–प्रवाहरूप से प्रतिकल्प में एकरस अवस्थित, परवासुदेव भगवान् ही इस वंश के मूल प्रवर्तक हैं। भगवान् से ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई, ब्रह्मा से मरीचि, मरीचि के पुत्र काश्यप, काश्यप के पुत्र विवस्वान्, उनके पुत्र मनु, मनु के इक्ष्वाकु आदि महान् प्रतापी राजा हुये। इस श्लोक से श्रीराम को मूलकारण कहा गया। भगवान् के अवतार श्रीपरशुरामजी कहते हैं– हे नाथ !

आप मधु नामक राक्षस का वध करने वाले मधुसूदन, निर्विकार, सर्वेश्वर हैं, इस धनुषके ग्रहणसे हमें यह ज्ञान हो गया। इस श्लोक में श्रीराम को मधुसूदन कहा गया। उन्होंने धनुष का इतिहास सुनाते हुये कहा–रघुनन्दन ! साक्षात् विश्वकर्मा के बनाये हुये ये दो धनुष बड़े प्रबल तथा दिव्य थे। इनमें से एक को देवताओं ने त्रिपुरासुर से युद्ध करने के लिये भगवान् शंकर को दे दिया। ककुत्स्थनन्दन ! जिससे त्रिपुर का नाश हुआ था, वह वही धनुष था जिसे आपने तोड़ डाला है। दूसरा दुर्धर्ष यह है जो मेरे हाथ में है। इसे देवताओं ने भगवान् विष्णु को दे दिया था वही यह वैष्णव धनुष है। उन दिनों समस्त देवताओं ने भगवान् शिव एवं विष्णु भगवान् के बलाबल की परीक्षा के लिये पितामह ब्रह्माजी से पूछा था कि इन दोनों देवताओं में अधिक बलशाली कौन है? पूर्वमें जब भगवान् ने वराह अवतार धारणकर पृथिवी का उद्धार किया था तब आपने उनकी स्तुति की थी। इस त्रिपुरासुर के वध करने से श्रीशिवजी अधिक बलशाली हैं–ऐसा संशय उत्पन्न हो गया है। देवताओं के अभिप्राय को जानकर ब्रह्माजी ने दोनों में विरोध उत्पन्नकर दिया। श्रीविष्णु भगवान् से जाकर कहा कि श्रीशिवजी कहते हैं– वास्तविक वीर मैं हूँ। विष्णु भगवान् तो मेरे पीछे–पीछे चलने वाले हैं तथा श्रीशिव-जी से कहा– विष्णु भगवान् कहते हैं यदि मैं शिवजी के बाणमें प्रवेश नहीं करता तो वे त्रिपुरासुर का वध नहीं कर सकते थे। इस प्रकार लीलाधारी ब्रह्माजी ने दोनों देवताओं में विरोध उत्पन्नकर दिया। पुनः श्रीविष्णु एवं श्रीशिवजी में भयङ्कर युद्ध

हुआ। उस समय भगवान् विष्णु ने हुङ्कार मात्र से शिवजी के भयङ्कर बलशाली धनुष को तथा त्रिलोचन श्रीशिवजी को भी स्तम्भित कर दिया। तब ऋषिगण तथा चारणों के सहित देवताओं ने आकर उन दोनों श्रेष्ठ देवताओं से शान्ति के लिये याचना की। पश्चात् वे दोनों वहाँ शान्त हो गये। भगवान् विष्णु के पराक्रम से श्रीशिवजी के उस धनुष को स्तम्भित देखकर ऋषियों सहित देवताओं ने भगवान् विष्णु को श्रेष्ठ माना। 'अधिकं मेनिरे विष्णुं देवाः सर्षिगणास्तथा'। इससे श्रीराघवेन्द्र की सर्वोत्कृष्टता कही गई है। उद्भट रावण के वध की इच्छा से देवताओं की प्रार्थना सुनकर सनातन भगवान् विष्णु मनुष्यलोक में अवतीर्ण हुये। इससे प्रभु के सनातनस्वरूप तथा अवतार-कालिक सौलभ्यगुण का वर्णन किया गया। अरण्यकाण्ड में मारीच ने रावण से कहा है- जिनकी पत्नी श्रीजनकनन्दिनी हैं उन श्रीराम का तेज अप्रमेय है- अनन्त है। इससे श्रीराघवेन्द्र की असीम महिमा का वर्णन किया गया है। किष्किन्धाकाण्ड में तारा कहती हैं-रघुनन्दन! आप अप्रमेय-देश, काल तथा वस्तु की सीमा से रहित हैं आपकी प्राप्ति बहुत कठिन है। आप जितेन्द्रिय तथा उत्तम धर्म का पालन करने वाले हैं। आपकी कीर्ति कभी नष्ट नहीं होती। आप दूरदर्शी तथा पृथ्वी के समान क्षमाशील हैं। आपके नेत्र करुणारस से भरे हैं। तारा ने बाली से भी कहा है-श्रीराम साधुपुरुषों के आश्रयदाता कल्पवृक्ष हैं। तथा संकट में पड़े हुये प्राणियों के लिये एकमात्र गति हैं। आर्त्त पुरुषों के आश्रय, यश के एकमात्र भाजन, ज्ञान-विज्ञान से सम्पन्न

तथा पिता की आज्ञा का पालन करने वाले हैं जिस प्रकार गिरि-राज हिमालय नाना धातुओं की खान है उसी प्रकार श्रीराम उत्तम गुणोंके बहुत बड़े भंडार हैं इससे ज्ञान, आनन्द आदि समस्त गुणों का भंडार प्रभु को कहा गया है।

सुन्दरकाण्ड में श्रीहनुमान्‌जी ने रावण से कहा–हे रावण ! ब्रह्मा स्वयम्भू चतुरानन, रुद्र त्रिलोचन त्रिपुरारी, इन्द्र महेन्द्र सुरनायक एक साथ सभी मिलकर भी उसकी रक्षा नहीं कर सकते जिसका वध श्रीरामजी करना चाहें। चराचर प्राणियों तथा समस्त लोकों का संहार कर पुनः उनकी सृष्टि करने में श्रीराम समर्थ हैं क्योंकि उनका नाम यश महान् है।

युद्धकाण्ड में श्रीमन्दोदरीजी कहती हैं– श्रीरामजी 'महा-योगी' हैं अर्थात् भक्तों के योग–क्षेम की चिन्ता करते रहते हैं। कोष के अनुसार योग का अर्थ यहाँ उपाय है। 'परास्य शक्ति-र्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञान बल क्रिया च'। परमात्मा की अनेक विशिष्ट शक्तियाँ हैं तथा स्वाभाविक ज्ञान, बल एवं क्रियायें हैं, इस श्रुतिके अनुसार सभी जीवात्माओं से श्रेष्ठ होने के कारण श्रीरामजी को 'परमात्मा' कहा जाता है। आत्मा से परम अर्थात् उत्कृष्ट, परमश्चासौ आत्मा च परमात्मा, सर्वजीवात्मभ्यः उत्कृष्ट इत्यर्थः।

आत्माओं की आत्मा एवं अन्तर्यामी होने के कारण भी श्रीरामजी परमात्मा हैं। श्रुति में जीवात्मा को परमात्मा का शरीर कहा गया है–'यस्यात्मा शरीरम्' प्रभु अनेक नित्य चेतनों के एक नित्य चेतन है– "नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानामेको वहूनां यो विदधाति कामान् ॥"

'सनातनः' षड्विकारों से रहित तथा सदा अस्तित्व से युक्त होने के कारण श्रीरामजी को सनातन कहा जाता है। 'अनादि मध्यनिधनः' वे जन्म वृद्धि विनाश रहित एवं अपक्षय ह्रास तथा परिणाम से रहित हैं। विष्णुपुराण में भी कहा गया है–'अपक्षयविनाशाभ्यां परिणामर्द्धिः जन्मभिः। वर्जितः शक्यते वक्तुं यः सदास्तीति केवलम् ॥' ह्रास, विनाश परिणाम जन्म वृद्धि आदिसे रहित शाश्वत सत्ता सम्पन्न केवल श्रीरामजी ही हैं।

श्रीमन्दोदरीजी आगे कहती हैं–'महतः परमो महान्' इन्द्र आदि देवता महान् हैं, उनसे महान् ब्रह्मा आदि देवता हैं। श्रीरामजी उनसे भी बड़े हैं अतः परममहान् हैं। 'तमसः परमः' श्रीराम तपोरूप प्रकृतिमण्डल से परे हैं, अर्थात् अप्राकृत दिव्यधाम में विराजमान रहते हैं। श्रुति भी कहती है– 'आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्' 'आदित्य वर्णं तमसस्तुपारे' इत्यादि। अर्थात् प्रकृतिमण्डल से परे परमप्रकाशमयधाम में भगवान् रहते है। इस प्रकार भगवत्स्वरूप वर्णन करने के पश्चात् अब भगवान् के दिव्य मङ्गलमयविग्रह का वर्णन करती हैं– 'शङ्खचक्रगदाधरः' अर्थात् आश्रितों की रक्षा के लिये निरन्तर शंख,चक्र,गदा,धनुष, वाण आदि दिव्य आयुध धारण किये रहते हैं तथा आश्रितों के पोषक होने के कारण उनको 'धाता' कहा जाता है। उन्होंने वक्षस्थल में 'श्रीवत्स' का चिह्न धारण कर रक्खा है। यह उनके परत्व का सूचक है। श्रीजी का नित्ययोग है। शास्त्रों में कहा गया है– 'नित्यैवैषा जगन्माता विष्णोः श्रीरनपायिनी' इत्यादि श्रीजी के सम्बन्ध से उनका तेज असाधारण रहता है। रामायण

में कहा गया है-'अप्रमेयं हि तत्तेजो यस्य सा जनकात्मजा' मारीच ने रावण से कहा है कि श्रीजनकनन्दिनी के सम्बन्ध से श्रीराघवेन्द्र का तेज अप्रमेय है, इसीलिये वे किसी से जीतने योग्य नहीं हैं अर्थात् अजय हैं। उपासकों के अतिरिक्त और किसी से वे पराजित नहीं होते, देश, काल, वस्तु तीनों बन्धनों से मुक्त होने के कारण तथा विकारशून्य होने के कारण वे शाश्वत हैं। अनुकूल प्रतिकूल दोनों परिस्थितियों में वे नित्य एकरस अपनी महिमा में स्थित रहते हैं अतः वे 'ध्रुव' हैं। इस प्रकार पूर्वोक्त विशेषणों से विशिष्ट श्रीराम निश्चित ही असाधारण भगवत्ता से युक्त हैं–'व्यक्तमेष।' यदि कोई जिज्ञासा करे कि जब श्रीराम सर्वेश्वर हैं तब मनुष्य के रूप में उनका अवतार क्यों हुआ? वानरों के साथ सहवास क्यों हुआ? अवाप्तसमस्तकाम आत्माराम श्रीराम के लिये रावण आदि राक्षसों के वध से क्या प्रयोजन था? इन सभी प्रश्नों का उत्तर देती हुई श्रीमन्दोदरीजी कहती हैं कि साधुपरित्राण तथा राक्षसों के विनाश के लिये उनका अवतार हुआ है। सत्यपराक्रम भगवान् श्रीविष्णु ही मनुष्य के रूप में अवतीर्ण हुये तथा सभी देवतागण वानर के रूप में अवतीर्ण होकर प्रभु की सेवा करने लगे। सभी लोगों के अनिष्ट दूर कर अभीष्ट के दाता, सर्वेश्वर ने लोकहित के लिये राक्षस परिवार के सहित तुम्हारा वध किया, क्योंकि तुम लोकमात्र के विरोधी थे।

श्रीमन्दोदरीजी श्रीराघवेन्द्र की भगवत्ता का वर्णन करने के पश्चात् संक्षिप्त रूप से श्रीमिथिलेशराजनन्दिनी के स्वरूप का

विवेचन करती हुई कहती हैं—हे दुर्मते ! श्रीमैथिलीजी अरुन्धती एवं रोहिणी से भी श्रेष्ठ तथा माननीया पूजनीया थीं। उनका हरण कर तुमने बड़ा ही अनुचित कार्य किया है। अरुन्धती रोहिणी केवल पतिव्रतामात्र हैं किन्तु श्रीजनकनन्दिनी पतिव्रता के साथ ही मान्या जगज्जननी भी हैं। यदि कहो कि पतिव्रता शिरोमणि श्रीजनकनन्दिनी ने अपहरण के समय मुझको भस्म क्यों नहीं किया ? इसका उत्तर देती हैं— 'वसुधायाः' अर्थात् पचास कोटि योजन विस्तृत पृथ्वीमें जो क्षमागुण है वह केवल श्रीमिथिलेशराजनन्दिनीजी में है अतः अत्यन्त क्षमावती होने के कारण उन्होंने तुमको भस्म नहीं किया। श्रीजनकनन्दिनी लक्ष्मी की भी लक्ष्मी हैं अर्थात् लक्ष्मी का भी कारण हैं, तथा श्रीराघवेन्द्र की प्राणप्रिया हैं। ऐसी दिव्य लक्षणसम्पन्ना मंगलमयी का अपहरण मारीच की सहायता से तुमने निर्जन वन में किया। उन्होंने तुमको भस्म तो नहीं किया किन्तु उनके तेज से तुम बाद में भस्म हो गये, ऐसी मेरी दृढ़ धारणा है। इस प्रकार श्रीजनकनन्दिनी के साथ श्रीराघवेन्द्र के असाधारण परत्व का श्रीमन्दोदरीजी ने यहाँ वर्णन किया। जब जगज्जननी श्रीजानकीजी की अग्निपरीक्षा हो रही थी तब सभी समुपस्थित लोग हा-हाकार कर रहे थे। श्रीरामजी भी इस कार्य को मन से उत्तम नहीं समझ रहे थे तथा दुःखी होकर ध्यान कर रहे थे, इतने में ही वहाँ इन्द्र, बरुण, कुबेर, श्रीशिवजी के साथ श्रीब्रह्माजी पधारे। उन्होंने श्रीरामजी से कहा—हे श्रीराम! अपने वास्तविक स्वरूप को क्यों नहीं समझ रहे हैं? इसके पश्चात् श्रीराम की विभूतियों का वर्णन

करते हुये ब्रह्माजी ने कहा—प्रभो ! पूर्वकाल में वसुओं के प्रजा-पति ऋतधामा नामक वसु आप ही है। आप तीनों लोकों के आदिकर्ता स्वयं प्रभु हैं। "त्रयाणामपि लोकानामादिकर्ता स्वयं प्रभुः" यह पंक्ति इस सर्ग में दो बार पठित है। स्वामी श्रीकर-पात्री जी महाराज कहते हैं—जिस प्रकार श्रीमद्भागवत में श्री कृष्ण के लिये 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्' कहा गया है उसी प्रकार श्रीमद्वाल्मीकि रामायण में यहाँ भगवान् श्रीराम को एक ही सर्ग में दो बार 'स्वयं प्रभुः' कहा गया है। ब्रह्माजी कहते हैं—रुद्रों में अष्टम रुद्र तथा साध्यो में पंचम साध्य भी आपही हैं। दो अश्विनीकुमार आपके कान हैं तथा सूर्य एवं चन्द्रमा आपके नेत्र हैं। शत्रुसन्तापदायक प्रभो ! सृष्टि के आदि, अन्त तथा मध्यमें भी आपही दिखाई देते हैं ऐसी दशा में एक साधारण मनुष्य की भाँति आप श्रीवैदेही की उपेक्षा क्यों कर रहे हैं ? लोकपालों के सहित ब्रह्मा के इस प्रकार कहने पर धर्मात्माओं में श्रेष्ठ समस्त लोकों के स्वामी राघवेन्द्र श्रीराम ने श्रेष्ठ देवताओं से कहा—देवगण ! मैं तो अपने को मनुष्य दशरथ पुत्र राम ही समझता हूँ। भगवन् ! मैं जो हूँ तथा जहाँ से आया हूँ वह सब आप ही मुझे बताइये। ब्रह्माआदि देवताओं ने मिलकर एक साथ प्रभु की महिमा का वर्णन किया इस श्लोक से सभी देवताओं के पूजनीय चतुर्मुख ब्रह्मा से अपने प्रभाव का ज्ञान कराने की इच्छा से प्रभु अपने सौशील्य गुण का भी प्रकाशन कर रहे हैं।

'आत्मानं मानुषं मन्ये' इस पंक्ति का तात्पर्य है कि

अनन्त कोटि ब्रह्माण्डनायक 'अणोरणीयान् महतो महीयान्' आदि असाधारण परत्व की अपेक्षा मनुष्य के रूप में अभिनय करना ही मुझे अत्यन्त प्रिय है। केवल रामनाम की अपेक्षा मुझे दशरथनन्दन राम यह नाम अधिक प्रिय है। इस श्लोक में तीन प्रश्न किये गये हैं–स्वरूप, सम्बन्धी तथा प्रयोजन विषयक प्रश्न हैं। 'योऽहम्' यह स्वरूप विषयक प्रश्न है। 'यस्य' यह सम्बन्धी विषयक प्रश्न है 'यतश्च' यह प्रयोजन विषयक प्रश्न है। 'भगवान् तद् ब्रवीतु' यद्यपि श्रीदशरथनन्दन रूप ही मुझे अधिक प्रिय है, अनन्तकोटि ब्रह्माण्डनायकत्व, सर्वज्ञत्व, सर्वशक्तिमत्व आदि परत्व प्रिय नहीं है तथापि आप मेरे परत्व का वर्णन कर सकते हैं। परत्व वर्णन मेरा अभिमत नहीं है अपितु सौलभ्य वर्णन ही एकमात्र मेरा अभिमत है। रावणवध के पूर्व परत्वगोपन आवश्यक था, अब जब रावण का वध हो गया तब प्रभु का कार्य सम्पन्न होगया अतः परत्व वर्णन की आज्ञा सहर्ष ब्रह्मा को प्रदान कर रहे हैं—'भगवान् तद् ब्रवीतु' का यही तात्पर्य है।

जब प्रभु ने ब्रह्मा को परत्व वर्णन करने की आज्ञा दी तब वे प्रभु के वेदशास्त्र प्रतिपादित असाधारण परत्व का वर्णन करते हुये कहते हैं—'भवान्नारायणो देवः' आप साक्षात् पर वासुदेव हैं–त्रिदेवों के कारण हैं। जब पर वासुदेव स्वरूप से श्रीविष्णुरूप धारणकर क्षीर समुद्र में शयन करते हैं तब आपको श्रीनारायण नाम से भक्तजन स्मरण करते हैं।

आपोनारा इति प्रोक्ता आपो वै नर सूनवः।
ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥ (मनुस्मृति)

नर-कारण ब्रह्म से उत्पन्न होने के कारण 'नार' को जल कहते हैं। नार-जल में शयन करने से श्रीराम को नारायण कहा जाता है। इस विशेषण से प्रभु को जगत्कारण कहा गया है। 'भवान्नारायणो देवः' इस श्लोक से 'न विदुः को भवानिति पर्यन्त स्वरूप विषयक प्रथम प्रश्न का उत्तर दिया गया है

'दृश्यसे सर्वभूतेषु ब्राह्मणेषु च गोषु च।
दिक्षु सर्वासु गगने पर्वतेषु वनेषु च।'

इस श्लोक से सम्बन्ध विषयक प्रश्न का उत्तर दिया गया है, तथा 'सीता लक्ष्मीर्भवान् विष्णुर्देवः कृष्णः प्रजापतिः।
वधार्थं रावणस्येह प्रविष्टो मानुषीं तनुम्।'

इस श्लोक से प्रयोजन विषयक प्रश्न का उत्तर दिया गया है।

वेदावतार श्रीमद्वाल्मीकि रामायण में वेदान्तवेद्य श्रीसीता-रामतत्व का इस 'ब्रह्मस्तव' में सम्यक् वर्णन किया गया है। इस स्तव को 'आर्षस्तव' वेद सम्बन्धिस्तव कहा गया है। श्रीगोविन्दराज कहते है कि जो लोग श्रीरामभक्ति करने में असमर्थ हैं वे केवल इस स्तोत्र के पाठ मात्र से ही श्रीसीता-रामजी को प्राप्त कर सकते हैं। श्रीसीतारामजी के प्रत्येक उपासक को इस ब्रह्मस्तव का प्रतिदिन पाठ करना चाहिये। स्तोत्र की विशद व्याख्या मेरी पुस्तक 'श्रीमद्वाल्मीकि रामायण के प्रतिपाद्य देवता श्रीराम हैं' में देखनी चाहिये।

शब्दार्थ इस प्रकार है—

भगवान् श्रीराघवेन्द्र की स्तुति करते हुये सर्वज्ञ ब्रह्माजी कहते है—

श्रीराम ! आप साक्षात् नारायण-पर वासुदेव हैं। देव-दिव्य-क्रीड़ापरायण हैं। श्रीमान् हैं—सर्वदा श्रीजी आपके साथ विराजमान रहती हैं। चक्र आपका असाधारण आयुध हैं। आप विभु हैं—व्यापक हैं। पृथिवी का उद्धार करने वाले एक दाढ़वाले आदिवाराह आप ही हैं। भूतकालिक मधुकैटभ नामक शत्रु तथा भविष्यकालिक शिशुपाल आदि शत्रुओं को जीतने वाले आप ही हैं। श्रीरघुनन्दन ! अक्षर अविनाशी परब्रह्म आप ही हैं। अस्ति, जायते, वर्धते, परिणमते, अपक्षीयते, विनश्यति—इन छः प्रकार के विकारों से रहित होने के कारण, सभी परिवर्तनों से रहित 'सत्य' आपही हैं। आदि मध्य, अन्त—तीनों कालों में सदा एक रस आपही विद्यमान रहते हैं। आपही लोकों के सिद्ध-धर्म हैं। यज्ञ यागादि साध्य धर्म हैं किन्तु प्रभु सिद्ध धर्म हैं ! समस्त लोकों के कल्याणों के साधन भी आप हैं तथा साध्य भी आपही हैं। प्रपन्नजन चतुर्विध पुरुषार्थों के साधनार्थ आपका ही आश्रय ग्रहण करते हैं।

आप ही विष्वक्सेन--सभी के स्वामी हैं। एक ही साथ अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष—इन चार पुरुषार्थों को अपने भक्तों को प्रदान करते हैं। इसलिए आपने चार भुजाएँ धारण कर रखी हैं। इसीलिए श्रीरामजी को चतुर्भुज कहा जाता है। शार्ङ्ग-धनुष धारण करने वाले आप ही हैं। भक्तों की रक्षा के लिए सर्वदा आयुधों से युक्त भगवान् रहते हैं। आप ही हृषीकेश हैं। इन्द्रियों के नियन्ता तथा सभी भक्तों की इन्द्रियों को श्रीराम

अपनी ओर आकृष्ट कर लेते हैं इसीलिए उनका नाम हृषीकेश है। अयोध्याकाण्ड में कहा गया है—चन्द्रमा से भी कमनीय विग्रह वाले श्रीरामजी का दर्शन अति प्रिय है। अपने रूप गुणों से कठोर हृदय वाले पुरुषों को भी दृष्टि व चित्त का अपहरण कर लेते हैं—

'चन्द्रकान्ताननं राममतीव प्रियदर्शनम्'
'रूपौदार्य गुणैः पुंसां दृष्टिचित्तापहारिणम् ।'

ब्रह्माजी श्रीरामजी से कहते हैं—आप ही पुरुष हैं। लोक परलोक के समस्त पदार्थों को प्रदान करने के कारण अथवा हृदयरूपी गुहा में शयन करने के कारण श्रीरामजी को पुरुष कहा जाता है। आप ही पुरुषोत्तम हैं।

क्षर-प्रकृति, अक्षर-जीवात्मा इन दोनों से उत्तम होने के कारण श्रीरामजी को पुरुषोत्तम कहा जाता है। गीता में भी पुरुषोत्तम का यही अर्थ है। अथवा आश्रित का वियोग श्रीरामजी को असह्य है-अतः उन्हें पुरुषोत्तम कहा जाता है। बालकाण्ड में कहा गया है कि श्रीलक्ष्मणकुमार के बिना श्रीराम मिष्टान्न भोजन नहीं करते तथा उनके बिना उन्हें निद्रा भी नहीं आती है क्योंकि वे पुरुषोत्तम हैं।

'न च तेन बिना निद्रां लभते पुरूषोत्तमः ।
मृष्टमन्नमुपानीतमश्नाति नहि तं विना ॥'

आश्रित की रक्षा करने में आपकी प्रतिज्ञा कभी भङ्ग नहीं हुई है अतः आप अजित हैं किसी से भी पराजित नहीं है। आप

नन्दक नामक खड्ग धारण करने वाले व्यापक विष्णु तथा महाबली कृष्ण हैं। आप ही देवसेनापति तथा दिव्य जनपद के पालक हैं। आप ही बुद्धि, सत्त्व, क्षमा, इन्द्रिय निग्रह तथा सृष्टि एवं प्रलय के कारण हैं आप ही उपेन्द्र तथा मधुसूदन हैं। आपका कर्म इन्द्र के कर्म की भाँति है, असाधारण ऐश्वर्य सम्पन्न होने के कारण आपको महेन्द्र कहा जाता है। आप ही पद्मनाभ अर्थात् मुझ ब्रह्मा के भी जनक हैं। रण में शत्रुओं का अन्त करने वाले आप ही हैं। अलौकिक तत्त्वों के साक्षात्कार करने में समर्थ तथा अवतार रहस्य के विशेष ज्ञाता श्रीवाल्मीकि आदि महर्षिगण आपको शरणागतवत्सल तथा उपाय (साधन) भी बतलाते हैं। आप ही सहस्रों शाखारूप शृङ्ग तथा सैकड़ों विधिवाक्यरूप मस्तकों से युक्त वेदरूप महाबृषभ हैं। आप ही तीनों लोकों के आदिकर्ता तथा स्वयं प्रभु परम स्वतन्त्र है। आप सिद्ध-मुक्त, साध्य-नित्य जीवों के आश्रय हैं तथा अपने समान भोग प्रदान करने वाले हैं। आश्रितों की रक्षा के लिए उनसे भी पूर्व प्रकट रहते हैं। अर्थात् सबके पूर्वज हैं। आप ही यज्ञ वषट्कार, तथा ओङ्कार भी हैं। सभी कर्मों के द्वारा आपकी ही आराधना की जाती है। आप ही परन्तप-उत्कृष्ट तप से आराधन करने योग्य हैं। आपके आविर्भाव तथा तिरोभाव को कोई नहीं जानता। आप कौन हैं—इसका भी किसी को पता नहीं है। भगवान् श्री राघवेन्द्र की महिमा अपरिच्छिन्न असीम है अतः अपरिच्छिन्न रूप में उस महिमा का ज्ञान सम्भव है किन्तु प्रभु की महिमा की सीमा न होने से वेद तथा

वेदज्ञ दोनों के लिये समग्र रूप में उस महिमा का ज्ञान सम्भव नहीं। वेद स्वयं कहते हैं — 'कइत्था वेद यत्र सः'। यद्यपि प्राणिमात्र के आप अन्तर्यामी हैं किन्तु गौओं में तथा ब्राह्मणों में आपका विशेष दर्शन होता है। समस्त दिशाओं में, आकाश में, पर्वतों में तथा नदियों में भी आपकी ही सत्ता है। आपके सहस्रों चरण, सहस्रों मस्तक तथा सहस्रों नेत्र हैं। आपही सम्पूर्ण प्राणियों को पृथ्वी को तथा समस्त पर्वतों को धारण करते हैं। पृथ्वी का अन्त हो जाने पर आप ही जल के ऊपर महान् सर्प—शेषनाग के रूप में दिखाई देते हैं।

श्रीराम ! आप ही तीनों लोकों को तथा देवता, गन्धर्व एवं दानवों को धारण करने वाले विराट् पुरुष नारायण हैं। सबके हृदय में रमण करने वाले प्रभो ! श्रीराम मैं ब्रह्मा आपका हृदय तथा देवी सरस्वती आपकी जिह्वा हैं प्रभो ! सृष्टिकर्ता ने जिसकी सृष्टि की है वे सब देवता आपके विराट् शरीर में रोम हैं। आपके नेत्रों का बन्द होना रात्रि तथा खुलना ही दिन है। वेद आपके संस्कार हैं—श्वास से उत्पन्न हैं। बहुत कहने की क्या आवश्यकता ? आपके बिना इस जगत् का अस्तित्व नहीं है। जड़ चेतनों में ऐसी एक भी वस्तु नहीं है जिसके अन्तर्यामी आप नहीं हैं।

इस प्रकार निषेधपरक श्रुतियों का अर्थ छब्बीसवें श्लोक तक प्रतिपादन कर अब सत्ताइसवें श्लोक से समानाधिकरण भाव से प्राप्त श्रुतियों का अर्थ कहते हैं।

'जगत् सर्वं शरीरं ते स्थैर्यं ते वसुधातलम्'

प्रभो ? सम्पूर्ण विश्व आपका शरीर है। पृथ्वी आपकी स्थिरता है। अग्नि आपका कोप है तथा चन्द्रमा आपकी प्रसन्नता है। आपके वक्षःस्थल में श्रीवत्सका चिह्न है।

'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'—सभी जड़—चेतन ब्रह्मात्मक होने से ब्रह्मस्वरूप ही है। तत्वमसि—तुम भी श्वेतकेतो! ब्रह्मात्मक होने से ब्रह्मरूप ही हो, इत्यादि समानाधिकरण—एकत्व बोधक श्रुतियों का अर्थ 'जगत्सर्वम्' इस श्लोक से कर रहे हैं। जड़—चेतन जगत् श्रीरामजी का शेष है। जगत् प्रभु का शरीर है तथा प्रभ शरीरी हैं। शरीर शरीरी के अधीन रहता है शरीर का उपयोग शरीरी (आत्मा) के सुख के लिये ही होता है अतः शरीरभूत जड़—चेतन जीव भी प्रभु की सेवा के लिये ही है उन्हीं के सुख शोभा के लिये है। जिस प्रकार माला पुष्प चन्दन आदि धारण करने वाले सत्पुरुष की शोभा बढ़ाते हैं उसी प्रकार शेषभूत जीव भी शेषी प्रभु की नित्य सेवा प्राप्त कर उनकी शोभा भी बढ़ाता है, इसीलिये जीव को कौस्तुभमणि कहा गया है—

'मणिवर इव शौरेर्नित्यहृद्योऽपि जीवः'

जब जगत् प्रभु का शरीर है तब शरीर के सभी विशेषण प्रभु के विशेषण बन गये अतः वसुधा की स्थिरता प्रभु की ही स्थिरता है। कोप अग्नि का ताप तथा प्रभु की प्रसन्नता चन्द्रमा है। श्रीवत्सलक्षणः—श्रीराघवेन्द्र के वक्षःस्थल पर पीतरोमावली का गुच्छा जो दक्षिणावर्त भ्रमर के रूप में है। यह श्री

जानकीजी का प्रतिरूप कहा गया है। श्रीरामभद्र चारो पुरुषार्थों एवं भक्ति का सदा दान किया करते हैं अतः श्रीजानकीजी श्रीवत्सरूप से सदैव दक्षिणांक में विराजमान रहती हैं। श्रीसन-त्कुमारसंहितान्तर्गत श्रीरामस्तवराज के 'श्रीवत्सकौस्तुभोरस्कम्' इस श्लोक की व्याख्या करते हुये श्रीहरिदासस्वामीजी लिखते हैं- 'महापुरुषत्वद्योतको वक्षो वर्ति पीतरोमात्मकचिह्न विशेषः श्रीवत्सशब्देनोच्यते।'

श्रीवत्स लक्षण का यह भी भाव है कि यथा जगत्कारणत्व भगवान् का असाधारण लक्षण है उसी प्रकार वक्षः स्थल में श्रीजी का चिह्न भी उनके असाधारण ऐश्वर्य के सूचक है। भगवान् की सर्वोत्कृष्ट भगवत्ता यही है कि उनके वक्षःस्थल में श्रीजी का चिह्न है यह भगवत्ता सूचक लक्षण है अतः यहाँ श्रीवत्सलक्षण कहा गया।

ब्रह्माजी प्रभु से कहते हैं- आपने वामनावतार के समय पूर्व काल में अपने तीन पगों से तीनों लोक नाप लिये थे। 'इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्।' इस श्रुति में वामना-वतार का वर्णन है। आपने अत्यन्त दारुण दैत्यराज बलि को बाँधकर इन्द्र को तीनों लोकों का राजा बनाया था। श्रीसीताजी साक्षात् लक्ष्मी हैं तथा आप भगवान् विष्णु हैं। आप ही भविष्य में द्वापर युग में श्रीकृष्णावतार धारण करेंगे अतः श्रीकृष्ण भी आप ही हैं। प्रजापति आप ही हैं। धर्मात्माओं में श्रेष्ठ श्री-रघुवीर! आपने रावण का वध करने के लिये ही मनुष्य के

आकार के दिव्य अप्राकृत शरीर में प्रवेश किया था। हम देवताओं का कार्य आपने सम्पन्न कर दिया।

श्रीराम ! आपके द्वारा रावण मारा गया। अब आप प्रसन्नता पूर्वक अपने दिव्य धाम में पधारिये। देव ! आपका बल अमोघ है। आपके पराक्रम भी अमोघ हैं, व्यर्थ होने वाले नहीं हैं। श्रीराम ! आपका दर्शन अमोघ है, आपका स्तवन भी अमोघ है तथा आप में भक्ति रखने वाले मनुष्य भी इस भूमण्डल में अमोघ--अक्षय होंगे। आप पुराणपुरुषोत्तम हैं दिव्य क्रीड़ा-परायण परमात्मा हैं। जो लोग आप में भक्ति रखेंगे वे इस लोक तथा परलोक में अपने सभी मनोरथ प्राप्त कर लेंगे।

गोविन्दराज कहते हैं—समस्त तप योग याग आदि धर्मों से श्रीरामभक्ति ही सर्वश्रेष्ठ परधर्म है। इस श्लोक से यह स्पष्ट होता है। यह परमऋषि ब्रह्मा का कहा हुआ अथवा वेद सम्बन्धी दिव्य स्तोत्र कथा पुरातन इतिहास है। जो लोग इसका कीर्तन करेंगे—पाठ करेंगे, उनका कभी पराभव नहीं होगा, इस संसार में पुनः उनका आगमन नहीं होगा। भूषणकार कहते हैं- जो लोग श्रीरामभक्ति करने में असमर्थ हैं उन्हे केवल इस स्तोत्र के पाठ से ही भगवान् की प्राप्ति हो जायगी।

इस स्तोत्र के द्वारा श्रीब्रह्माजी ने सुस्पष्ट कर दिया कि—विष्णु, नारायण, वामन, कृष्ण आदि नामों के वाच्य श्रीराम ही हैं क्योंकि ब्रह्माजी ने श्रीरामजी को ही विष्णु, नारायण, वामन वराह कृष्ण आदि कहकर स्तवन किया है। इस प्रकार समस्त श्रीरामायण में 'अभ्यास' के द्वारा श्रीराम को ही परतत्व कहा

गया है। प्रमाणान्तर की अप्राप्ति को अपूर्वता कहते हैं। श्रीराम ही परतत्वहैं इस विषय का ज्ञान अन्य प्रमाणों से सम्भव नहीं है।

भगवान् के सालोक्य आदि की प्राप्ति ही फल है जिसका श्रीरामायणजी के अन्त में महर्षि ने भलीभाँति वर्णन किया है—

'अथ विष्णुर्महातेजाः पितामहमुवाच ह' से लेकर 'जगाम त्रिदशैः सार्धं सदा हृष्टैर्दिवं महत्' श्लोकों की व्याख्या, 'सुरोऽसुरो वा……' इस श्लोक के व्याख्यान के अवसर पर देखनी चाहिये। वेदान्तसार श्रीमद्भागवत में भी भगवान् श्रीराम ने अयोध्यावासियों को सालोक्य प्रदान किया है- श्रीवेदव्यासजी ने इस प्रकार वर्णन किया है। प्रभु श्रीराम को जिसने स्पर्श कर लिया, जिसने उनका दर्शन कर लिया, जिसने कुछ काल तक उनके साथ निवास किया, जो उनके साथ कुछ दूर तक गया—वे तथा कोशलवासी उस दिव्यधाम को प्राप्तकर गये, जहाँ योगी-जन जाया करते हैं। प्रस्तुत प्रसङ्ग के अन्तिम श्लोक में यह बात कही गयी है। सुर हो अथवा असुर, नर हो अथवा वानर, सभी को अनन्यभाव से श्रीराम का ही भजन करना चाहिये, वे थोड़े से उपकार का भी स्मरण करते हैं। मनुष्य की आकृति में वे साक्षात् हरि हैं। उन्होंने उत्तरकोशलवासियों को दिव्य साकेत—धाम प्रदान किया।

अर्थवाद तथा उपपत्ति बालकाण्ड में इस प्रकार वर्णित है। ये दो दिव्यश्रेष्ठ धनुष लोकविश्रुत एवं अत्यन्त वलिष्ठ हैं। विश्वकर्मा ने इनका निर्माण किया। इत्यादि प्रसङ्गों में अर्थवाद

का वर्णन किया गया है। जब शिवजी के धनुष के साथ शिवजी को भी भगवान् विष्णु ने स्तम्भित कर दिया तब देवता तथा ऋषिगण श्रीशिवजी से भगवान् विष्णु को श्रेष्ठ मानने लगे इत्यादि स्थलों में विष्णु रुद्र के मध्य में विष्णु की अधिकता के निर्णय से उपपत्ति कही गयी है। इस प्रकार उपक्रम, उपसंहार, अभ्यास, अपूर्वता, फल, उपपत्ति इन छः प्रकार के तात्पर्य निर्णायक वाक्यों के द्वारा वेदान्तवेद्य परतत्त्व श्रीराम ही हैं ऐसा वेदावतार श्रीमद्रामायण के द्वारा महर्षि ने प्रतिपादित किया है।

श्रीसनत्कुमारसंहितान्तर्गत श्रीरामस्तवराज में श्रीयुधिष्ठिरजी ने श्रीवेदव्यासजी से पूछा है– भगवन्! आप योगियों में श्रेष्ठ तथा सभी शास्त्रों में विशारद हैं। मैं आपके मुखारविन्द से यह सुनना चाहता हूँ कि परतत्त्व क्या हैं? परजाप्य क्या है [जपने योग्य मन्त्र क्या है] तथा मुक्तिप्रद ध्यान क्या है? श्रीव्यासजी बोले–धर्मपुत्र युधिष्ठिर! जो पर है गुणातीत है, प्रकाशस्वरूप निर्मल कल्याणप्रद मोक्षप्रद है वही परतत्त्व है-इन विशेषणों से विशिष्ट श्रीराम ही परतत्त्व हैं उनका मन्त्र ही जपने योग्य परमंत्र है जो तारकब्रह्म नाम से प्रसिद्ध है तथा ब्रह्महत्यादि पापों को नाश करने वाला है–ऐसा वेदवेत्ता लोग कहते हैं। यहाँ पर-गुणातीत आदि विशेषण विशिष्ट परतत्त्व श्रीराम ही हैं ऐसा वेदव्यासजी ने कहा। श्रीराम तारक मन्त्र को ही परजाप्य कहा। दो प्रश्नों के उत्तर के पश्चात् मुक्ति साधन ध्यान क्या है?

इस तृतीय प्रश्न का उत्तर देते हुए कहते हैं— रमणीय श्रीअयोध्यानगर का प्रथम ध्यान करना चाहिए। पश्चात् रत्न-मण्डप का ध्यान करना चाहिए। उसके मध्य में कल्पतरु का। तत्पश्चात् रत्नसिंहासन का ध्यान करना चाहिये। उसके मध्य में नाना रत्नों से युक्त अष्टदल कमल का ध्यान करना चाहिए उसके मध्य में हजारों सूर्य के समान प्रकाशमान दशरथनन्दन श्रीराम का दर्शन करना चाहिये। इन्द्रनीलमणि की प्रभा के समान श्रीराम अपने पिता श्रीदशरथजी के अङ्क में विराजमान हैं। उनके सभी अङ्ग अत्यन्त कोमल हैं नेत्र विशाल तथा पीताम्बर धारण किये हुये हैं। इस प्रकार यहाँ वात्सल्य रस रसिक भक्तों के लिए बालरूप श्रीराम का ध्यान कहा गया है।

युगलोपासकों के लिए भगवान् का ध्यान 'वैदेही सहितं सुरद्रुमतले……' इस श्लोक में आगे कहा गया है। इस प्रकार समग्र श्रीरामस्तवराज में असाधारण रूप से श्रीसीतारामजी के परत्व का प्रतिपादन किया गया है। गलता गादी गालवाश्रम जयपुर पीठाधिपति स्वामी श्रीहर्य्याचार्यजी महाराज तथा श्री-अयोध्या श्रीजानकीघाट स्थित स्वामी श्रीहरिदासजी महाराज ने अपने अपने भाष्यों में इस विषय का विशद प्रतिपादन किया है। रसिक भक्तों को दोनों भाष्यों में श्रीसीतारामपरत्व का रसा-स्वादन करना चाहिए।

किम्पुरुष वर्ष में आदिपुरुष लक्ष्मणाग्रज श्रीसीताभिराम भगवान् श्रीराम के श्रीचरणों के सानिध्य में परम भागवत श्री-

हनुमानजी अविरल भक्तिसे उनकी उपासना करते हैं। इस प्रथम गद्य वाक्य में 'रामम्' पर्यन्त गद्य की व्याख्या की गई है अब शेष गद्यांश की व्याख्या की जाती है।

'तच्चरणसन्निकर्षाभिरतः'—श्रीराघवेन्द्र के चरणारविन्द में आसक्त होकर श्रीहनुमान्‌जी उनकी उपासना करते हैं। उपासना काल में हनुमानजी को श्रीसीतारामजी के पादारविन्द का सम्यक् साक्षात्कार हुआ यह सूचित किया गया है। अतः श्रीराम पादारविन्दमकरन्दसौगन्ध्यलुब्ध श्रीहनुमान्‌जी उनमें सम्यक् आसक्त है।

श्रीमद्‌भागवत के एकादश स्कन्ध के दूसरे अध्याय में राजा निमि ने नव योगीश्वरों से भागवत का लक्षण इस प्रकार पूछा है-योगीश्वर ! अब आप कृपा कर भगवद् भक्तों के लक्षण का वर्णन कीजिये। उनके क्या धर्म हैं ? उनका स्वभाव कैसा होता है ? वे मनुष्यों के साथ व्यवहार करते समय कैसे आचरण करते हैं ? क्या बोलते हैं, तथा किन लक्षणों के कारण भगवान् के अत्यन्त प्रिय है? नव योगीश्वरों में श्रीहरि नामक योगीश्वर ने भागवतों के लक्षणों का वर्णन इस प्रकार किया है-श्रीहरिजी ने ही भागवतों के लक्षणों का वर्णन क्यों किया ? इस जिज्ञासा का समाधान करते हुये श्रीराधारमण गोस्वामी लिखते हैं-भक्तों के पापों के हरण करने के कारण भगवान् का एक नाम हरि है। हरिर्हरति पापानि इस वचन के अनुसार हरि शब्द की मुख्यवृत्ति भगवान् में ही है। भागवतों के लक्षणों का वर्णन

भगवान् ही कर सकते हैं अतः श्रीहरि स्वयं निजमुख से भागवत-लक्षण का वर्णन करते हैं। भक्त अपने मुख से यदि भागवत लक्षण का वर्णन करेंगे तो आत्मप्रशंसा हो जाएगी अतः श्रीहरि ने ही भक्तों के लक्षणों का वर्णन किया।

श्रीहरिजी बोले—राजन्! समस्त चर अचर प्राणियों की आत्मा भगवान् हैं। तथा समस्त चराचर भगवान् का ही शरीर है। इस प्रकार विशिष्ट ज्ञान सम्पन्न महापुरुष उत्तम भागवत हैं। मशक से लेकर ब्रह्मापर्यन्त सभी के नियन्ता भगवान् हैं। उन सभी छोटे बड़े जीवों में जो कहीं न्यूनाधिकता न देखकर सर्वत्र परिपूर्ण भगवत्सत्ता को ही देखता है साथ ही समस्त प्राणियोंको सर्वशरीरी सर्वात्मा भगवान् में ही देखता है उसे भगवान् का परम प्रेमी उत्तम भागवत समझना चाहिये। हिरण्यकशिपु के पूछने पर श्रीप्रह्लादजी ने कहा—मेरे प्रभु सर्वत्र हैं तथा इस खम्भे में भी हैं इस प्रकार अपने उपास्य भगवान् को खम्भे में भी देखा। श्रीयशोदाजी ने श्रीकृष्ण के उदर में चर अचर समस्त प्राणियों का दर्शन किया।

गोस्वामीजी कहते हैं:—

'सो अनन्य जाके असि मति न टरै हनुमन्त।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामी भगवन्त॥'

जो भगवान् से प्रेम, उनके भक्तों से मित्रता, दुखी तथा अज्ञानियों पर कृपा एवं भगवान् पर द्वेष करने वालों की उपेक्षा करते हैं, वे मध्यम कोटि के भागवत हैं। जो भगवान् के अर्चाविग्रह मूर्ति आदि की पूजा तो श्रद्धापूर्वक करते हैं परन्तु भगवान् के

भक्तों एवं दूसरे लोगों की सेवा शुश्रूषा नहीं करते वे साधारण कोटि के भागवत हैं—स भक्तः प्राकृतः स्मृतः। श्रीधर स्वामीजी ने प्राकृत का अर्थ प्रारम्भ किया। जिसने अभी भक्ति प्रारम्भ की है, वह भी धीरे-धीरे उत्तम भक्त हो जाएगा। जो श्रोत्र नेत्र आदि इन्द्रियों के द्वारा शब्द रूप आदि विषयों को ग्रहण तो करते हैं परन्तु अपनी इच्छा के प्रतिकूल विषयों से द्वेष नहीं करते तथा अनुकूल विषयों के मिलने पर हर्षित भी नहीं होते। वे सबको अपने भगवान् की ही विभूति समझते हैं वे उत्तम भागवत हैं। जन्म, मृत्यु, भूख, प्यास, श्रम, कष्ट, भय तथा तृष्णा, ये संसार के धर्म क्रमशः शरीर, प्राण, इन्द्रिय, मन और बुद्धि को प्राप्त होते ही रहते हैं। जो महापुरुष भगवान की स्मृति में इतने तन्मय रहते हैं कि इन संसार धर्मों के बार-बार होते रहने पर भी उनसे मोहित नहीं होते- पराजित नही होते वे उत्तम भागवत हैं। जिनके मन में विषय भोग की इच्छा, सकाम कर्म में प्रवृत्ति तथा उनके बीज रूप वासनाओं का उदय नहीं होता तथा जो एकमात्र भगवान् वासुदेव में ही निवास करते हैं- वे उत्तम भागवत हैं।

सत्कुल में जन्म, तपस्या आदि कर्म तथा वर्ण आश्रम जाति से जिनका इस शरीर में अहंभाव नहीं होता है वे निश्चय ही भगवान्के प्रिय भक्त है। जो धन सम्पत्ति अथवा शरीर आदि में यह अपना है तथा यह पराया है-इस प्रकार का भेदभाव नहीं रखते, समस्त पदार्थों में समान रूप से भगवान् को ही देखते हैं

तथा किसी भी घटना अथवा संकल्प से विक्षिप्त न होकर शान्त रहते हैं—वे भगवान् के उत्तम भक्त हैं। राजन्! बड़े बड़े देवता तथा ऋषि मुनि भी अपने अन्तःकरण को भगवन्मय बनाते हुए जिनका अन्वेषण करते रहते हैं ऐसे भगवान् के चरण कमलों से आधे क्षण आधे पलक के लिए भी जो पृथक् नहीं होते निरन्तर उन चरणों की सन्निधि व सेवा में ही संलग्न रहते हैं, यहाँ तक कि कोई उन्हें त्रिभवन की राज्यलक्ष्मी दे तो भी वे तैलधारा की भाँति अविरल भगवत्स्मृति का तार नहीं तोड़ते। भगवद्-भजनानन्दसुधासिन्धु में निरन्तर निमग्न रहने के कारण जो त्रिभुवन राज्यलक्ष्मी की ओर ध्यान ही नहीं देते आधे पलक के लिए भी जो भगवद्भजन नहीं छोड़ सकते वे ही महापुरुष वास्तव में महाभागवत वैष्णवों में अग्रगण्य हैं—सबसे श्रेष्ठ हैं। रासलीला के अवसर पर नृत्य गीत से भाँति-भाँति के पादविन्यास करने वाले निखिल सौन्दर्य माधुर्य निधि भगवान् के चरणों के अंगुलि-नखमणिचन्द्रिका से जिन शरणागतों, भक्तजनों के हृदय का विरहजन्यसंताप एक बार दूर हो चुका है उनके हृदय में वह पुनः कैसे आ सकता है ? जैसे चन्द्रोदय होने पर सूर्य का ताप नहीं लगता। विवशता से नामोच्चारण करने पर भी सम्पूर्ण पापराशि को नष्ट कर देने वाले स्वयं भगवान् श्रीहरि भी जिन भक्तों के हृदय को क्षण भर भी छोड़ने में समर्थ नहीं होते, क्योंकि उन्होंने प्रेम की रस्सी से उनके चरण कमलों को बांध रखा है वास्तव में ऐसे महापुरुष ही भगवान् के भक्तों में प्रधान हैं भक्तशिरोमणि हैं।